मोतीमाला का अठारहवाँ रत्न

जय-पराजय

(Expurgated edition)

नाटककार

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

प्रकाशक

मोतीलाल बनारसीदास

हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक-विक्रेता,

सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर।

य संस्करण] १९४० [१॥)

प्रकाशक
सुन्दरलाल जैन, मैनेजिंग
प्रोप्राइटर, मोतीलाल बनारसीदास
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

मुद्रक
शान्ति लाल जैन
बम्बई संस्कृत प्रेस
शाही मुहल्ला, लाहौर ।

दो शब्द

पहला संस्करण

पिछले दो तीन वर्षों में, मुझे जिन कठिन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, जिन अनदेखी विपत्तियों से जूझना पड़ा और जीवन के इस संघर्ष में मैंने जो कठोर आघात सहे, उन्होंने मुझे एक प्रकार से अशक्त ही कर दिया था, हरा ही दिया था। नया वर्ष बहुतों के लिये नव-संदेश लाता है, वहुतों के अँधेरे दिलों में नूतन आशाओं की ज्योति भर देता है, किन्तु आज से कुछ मास पूर्व १६३७ के एक सिरे पर खड़े होकर जब मैंने सामने की ओर नजर डाली थी तो मुझे गहरी निराशा और असीम सूनेपन के अतिरिक्त कुछ दिखाई न दिया था। उस समय मेरा मन एक विचित्र उदासीनता से भर गया था। जी चाहता था—वैठा रहूँ, बस, सारा सारा दिन नीरव, चुपचाप बैठा रहूँ, किन्तु जीवनयुद्ध में जय-पराजय का चक्कर तो चलता ही रहता है, विजयी होकर अपने भाग्य को सराहना और पराजित होकर घुटनों में सिर रख कर बैठ जाना तो दुर्बलता है। निरन्तर चलना, निरन्तर लड़ते रहना ही तो जीवन है।

यही सोच कर उठा, चाहा कि इस उदासीनता को झटक दूँ। ऐसा न कर सका, तो फिर इसे किसी दूसरी ओर लगाने का ही निश्चय किया। लेखनी का सहारा लेकर उठा और चल पड़ा।

इन महीनों में मैंने खूब लिखा है और इस तरह जीवन की दुख-मय घड़ियों को व्यस्त रखने का प्रयास किया है। मैंने इन दिनों में कहानियाँ लिखी हैं, कविताएँ लिखी हैं, नाटक और लेख भी लिखे हैं। कहानियाँ तो मैं देर से लिखता चला आ रहा हूँ। आज से कोई पाँच वर्ष पूर्व स्व० प्रेमचंद ने मेरे एक कहानी-संग्रह का विस्तृत परिचय लिख कर मुझे प्रोत्साहित किया था, फिर हिन्दी में आया तो प्रसिद्ध राष्ट्र-नेता तथा कवि श्री माखनलाल जी चतुर्वेदी तथा सम्पादक 'सरस्वती' ने मेरा

साहस बढाया। हाँ, कविताएँ और नाटक मैंने इसी दौर में लिखे हैं।

जहाँ तक कविताओं का सम्बन्ध है, उन्हें मित्रों ने पसन्द करके मेरा उत्साह बढाया है। पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने उन्हें 'विशाल भारत' में मुख्य स्थान दिया। पहली कविता पर ही हिन्दी के प्रख्यात कवि और प्रसिद्ध राष्ट्र-नेता श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन ने उन को यह लिखा—

"कविता पढ कर मैं तो गद्गद हो गया। हृदय को सुख मिला, टीस मिली, हसरत मिली, राहत मिली। आशा है आप मेरी सजल-नयना कृतज्ञता उपेन्द्रनाथ जी तक पहुँचा देंगे।"

पंडित जी ने यह पत्र मुझे पहुँचा दिया था। और सत्य तो यह है कि यह प्रोत्साहनों का अमृत ही है जो बुझते हुए जीवन में फिर से नव आशा की जोत जगा देता है।

फिर यह नाटक लिखा। इस से पहले दो एकाङ्की नाटक भी लिखे थे, "पीपीं" हाल ही में विशाल भारत में छपा है, दूसरा "लक्ष्मी का स्वागत" अभी कहीं नहीं भेजा,* और यह अब आप के सामने है। सम्पादक 'विश्व बन्धु' ने इसे देख कर अपने पत्र में लिखा—'नाटक अपनी विशेषताओं को लेकर हिन्दी जनता के सन्मुख आएगा'। अब यह अपनी विशेषताओं या न्यूनताओं के साथ, जैसा भी है, आप के सामने है इस में जो कुछ विशेषताएँ हैं, उन का श्रेय मेरे मित्रों के प्रोत्साहन को है और जो न्यूनताएँ हैं उन का अपराध मेरी अपनी त्रुटियों के सिर!

रहा नाटक, इस के सम्बन्ध में अधिक कुछ न कह कर मुझे एक दो बातें पाठकों के सामने रखनी हैं। नाटक खेलने की चीज़ है। इसे लिखते समय नाटक-कार के लिये रंग-मंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखना

---

* "लक्ष्मी का स्वागत" हंस के एकांकी में छपा और हमारे यहाँ से प्रकाशित होने वाले सात एकांकी में सम्मिलित किया गया है।

अधिक जरूरी है। मुझे रंग-मंच का काफी अनुभव है, स्टेज का भी मैंने यथेष्ट ध्यान रखा है और यह नाटक, यदि कोई खेलना चाहे तो सफलता-पूर्वक, कुछ परिवर्तनों के साथ, खेला भी जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि मैंने इस में कुछ परिवर्तनों की गुंजाइश ही क्यों रखी ? इसे पूर्ण रूप से रंग-मंच पर खेला जाने वाला नाटक क्यों नहीं बनाया ? इस सम्बन्ध में दो बातें मैं निवेदन करना चाहता हूँ।

दुर्भाग्य-वश हमारे देश में स्टेज नाम की चीज अब नहीं रही। सिनेमा ने पूर्ण रूप से स्टेज को पीछे फेंक दिया है। दूसरे देशों में भी सिनेमा का आधिपत्य है पर वहाँ रंग मंच को भी उपयुक्त स्थान मिला हुआ है। वहाँ नाटक कम्पनियाँ छोटे-छोटे नाटक खेलती हैं जो सिनेमा की भाँति अधिक से अधिक दो घंटों में समाप्त हो जाते हैं। 'शा' और 'इब्सन' के नाटक अपने देश के रंग-मच की आवश्यकताओं को सामने रख कर ही लिखे गये हैं। उन में तीन अथवा चार बड़े बड़े दृश्य होते हैं। उन्हें ही अंक कह दिया जाता है। वहाँ एकाङ्की और एक दृश्य के नाटकों का भी रिवाज है। और वहाँ स्टेज की सुविधा के अनुसार अथवा उसकी जरूरतों को सामने रखते हुए नाटक-कार नाटक लिखते हैं। हमारे देश में ऐसा करना असम्भव सा ही है। नाटक-कार नाटक लिख देता है और यदि कोई खेलना चाहे तो अपनी आवश्यकतानुसार उस में परिवर्तन कर लेता है।

दूसरे, चूंकि देश में नाटक को खेलने अथवा देखने वाले कम हैं, इस लिये नाटक-कार रंग मच की आवश्यकताओं से, पढ़ने वालों की जरूरतों को अधिक ध्यान में रखता है। इस नाटक में भी पाठकों की सुविधा का मैंने अधिक ध्यान रखा है। नाटक की आरम्भिक घटना (initial incident) दूसरे अंक के पहले दृश्य से शुरू होती है, किन्तु पहला अंक पाठकों की सुविधा का ध्यान रख कर ही लिखा

गया है। इस में उस काल की चन्द विशेषताओं का जिक्र करना मैंने आवश्यक समझा है।

नाटक ऐतिहासिक है। इसकी कहानी टाड के राजस्थान में एक डेढ पृष्ठ पर लिखी हुई मिल सकती है। मैंने मुख्यतया इस कहानी को लिया है। मुख्य पात्र भी वहीं से लिए हैं। केवल एक परिवर्तन किया है टाड साहब ने रणमल को राणा लक्षसिंह का श्वसुर बताया है। किन्तु राय बहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'उदयपुर का इतिहास' में उसे राणा का साला लिखा है और श्वसुर का नाम रावल चूड़ावत लिखा है। मुझे सारी कहानी को पढ़ने के बाद यह बात ठीक लगी। इस लिये मैंने इस बात को अपना लिया। और भी कई बातों के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। मैंने उन बातों को नहीं छेड़ा, केवल मुख्य और प्रचलित कहानी की ओर ही ध्यान रखा है।

अन्त में अपने समालोचकों से मेरा यह निवेदन है कि वे जो भी आलोचना करें, उसे मुझ तक पहुंचाने का कष्ट भी जरूर करें। अपने आलोचकों की राय से मैंने सदैव लाभ उठाया है और मैं बहुत हद तक उनका आभारी हूँ।

अगस्त १९३७

दूसरा संस्करण

आज जय-पराजय का दूसरा संस्करण दो हजार का छप रहा है, पञ्जाब विश्वविद्यालय तथा राजपूताना बोर्ड ने इसे क्रमशः भूषण तथा मैट्रिक के लिये स्वीकृत किया है। इस बीच में हिन्दी की सभी मुख्य-मुख्य पत्र पत्रिकाओं ने विस्तृत समालोचनाएँ करते हुए इसका स्वागत किया है। मैं इस प्रोत्साहन के लिये उन सब का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

१८४ अनारकली — विनीत

जून १९३९ — उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

नाटक के पात्र

पुरुष

राणा लक्षसिंह	मेवाड़ के राणा
चंड	(चूँडा) मेवाड़ के युवराज
राघवदेव	राणा लक्षसिंह के दूसरे पुत्र
फोटिंग भट्ट	मेवाड़ के प्रख्यात पण्डित
	कीर्तिमान केशव
धनेश्वरराय	मेवाड़ के पुरोहित
हरिसिंह	कुमार राघवदेव का एक सेवक
रावल चूड़ावत	मंडोवर के अधिपति
रणमल	उनका निर्वासित ज्येष्ठ पुत्र
काहा	रानी तारा से उनका दूसरा पुत्र
बाघसिंह	रणमल का साथी, एक राठौर सरदार
अजित	रणमल का एक सेना-नायक

प्रधान मन्त्री, कोषाध्यक्ष, नागरिक, सेवक आदि

स्त्री

रानी	राणा लक्षसिंह की बड़ी रानी
हंसा बाई	मंडोवर की राजकुमारी, राणा लक्षसिंह की दूसरी रानी
हेमवती	राणा लक्षसिंह की बड़ी लड़की

सुकेशी	राणा लक्षसिंह की छोटी लड़की
कुसुम	रावल चूड़ावत की बड़ी रानी
तारा	रावल चूड़ावत की दूसरी रानी
मालती	हंसा बाई की सहेली
भारमली	मेवाड़ की प्रसिद्ध गायिका
रेवा	रानी कुसुम की दासी

मेवाड़ की धाय, दासियाँ, सहेलियाँ इत्यादि

स्थान

चित्तौड़ गढ़	मेवाड़ की राजधानी
खेलवाड़ा	कुमार राघव की जागीर
मंडोवर*	एक स्वतन्त्र राज्य
माँडू	एक स्वतन्त्र मुसलमान राज्य

---

* मंडोवर को मंडोर तथा मंडूर भी कहा जाता है।

जय-पराजय

प्रथम अंक

१

मेवाड़ के इष्ट देव एकलिंग जी के मन्दिर का एक भू-गृह जिसमें भगवान लकुटीश की मूर्ति स्थापित है।

मठाधीश, ब्राह्मण और सेवक मार्ग में दिये जलाते मूर्ति की उपासना को आ रहे हैं।

भू-गृह में अँधेरा है और अन्दर से उनके गाने की हलकी-सी ध्वनि सुनाई दे रही है जो प्रतिक्षण समीप होती जा रही है।

गाने की ध्वनि—

हे शिव, हे शंकर, हे ईश
जय जय जय जय जय लकुटीश *
लकुट दंड है तेरे साथ
विजय - पराजय तेरे हाथ
हम सेवक हैं तेरे नाथ

---

* 'लकुटीश' अथवा 'लकुलीश' शिव के १८ अवतारों में से एक माना जाता है। प्राचीन काल में शैव सम्प्रदायों में लकुटीश सम्प्रदाय बहुत प्रसिद्ध था और समस्त राजपूताना, गुजरात, मालवा, बंगाल, दक्षिण आदि में भगवान लकुटीश की उपासना होती थी। लकुटीश की मूर्ति द्विभुज होती है। उसके बायें हाथ में लकुट (दण्ड) रहता है और दाहिने हाथ में बीजोरा नामक फल होता है। मूर्ति के सर पर जैन मूर्ति के समान केश होते हैं और यह मूर्ति पद्मासन में बैठी हुई होती है। (राजपूताने का इतिहास)

हम पर कृपा करो जगदीश

जय जय जय जय जय जगदीश

एक सेवक—मसाल ऊपर करो, मसाल ऊपर करो ! !

दूसरा सेवक—हम पहुँच रहे हैं, हम पहुँच रहे हैं !

तीसरा सेवक—सुनो, सुनो, ऊपर भगवान एकलिंग की स्तुति मे गाए जाने वाले गीतो की ध्वनि दूर होते होते श्रवण-शक्ति की सीमा से परे चली गई है......

चौथा सेवक—और नीरवता हमारी साथिनी है, जिसे अँधेरे और ठंडक ने निस्तब्ध बना दिया है।

मठाधीश—बढ़े चलो, बढ़े चलो और दिये जलाते जाओ !

एक ब्राह्मण—इधर भी, उधर भी, सब ओर दिये जलाओ ! आज विजय का दिन है, उल्लास का दिन है।

दूसरा ब्राह्मण—चिर-काल से प्यासे इन मार्गों की प्यास बुझा दो !

सब सेवक—हम इन्हे प्रकाश मे नहला देंगे।

मठाधीश—इन झरोखो मे भी दिये जलाओ, इन झरोखो मे भी, ऐं ! इधर, इधर !

भू-गृह के झरोखों में दिये रखे जाते हैं, अन्दर क्षीण-सा प्रकाश फैल जाता है, जिसमें भू-गृह में आने वाला द्वार, एक खिड़की और भगवान् लकुटीश की विशाल मूर्ति दिखाई देती है।

एक सेवक—(खिड़की में दिये रखते हुए) हम पहुँच गए, हम

मन्दिर के पिछली तरफ़ हैं !

मठाधीश—उधर से चलो, देर हो रही है।

सेवक दिये रख कर चलता है, उसके पीछे दियों का थाल लिए एक दूसरा सेवक और फिर अन्य धीरे-धीरे गुजरते हैं।

पहला सेवक—किधर से जाएँ महाराज ! आगे का मार्ग कौन सा है ?

मठाधीश—(रुक कर) उधर से, दायें हाथ को मुड़ कर।

पहला सेवक— इधर अँधेरा है महाराज, घुप्प अँधेरा है।

एक ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें ! भगवान...

पहला सेवक—हाथ को हाथ नहीं सूझता महाराज !

दूसरा सेवक—ऐसा प्रतीत होता है जैसे अँधेरे ने अपना मुँह खोल दिया है और हम उसके कंठ मे उतरे चले जा रहे हैं।

वही ब्राह्मण—भगवान लकुटीश हमारी रक्षा करें, भगवान लकु...............

मठाधीश—गाओ, गाओ, भगवान लकुटीश की जय के गान गाओ ! रुकावटों का अँधकार दूर हो जायगा और सफलता का उजाला हमारे पाँव चूमेगा !

सब वही गाना गाते हुए धीरे-धीरे गुजरते हैं और शनै. शनैः मसालों का प्रकाश द्वार के रास्ते भू-गृह में फैल जाता है।

दो सेवक प्रवेश करते हैं।

एक—भगवान लकुटीश की जय, भगवान लकुटीश की जय।

दूसरा—हम पहुँच गए, हम भगवान की मूर्ति के सामने हैं; हम भगवान को शीश नवा रहे हैं।

नत-मस्तक होते हैं।

धीरे-धीरे दूसरे भी प्रवेश करते हैं।

मठाधीश—(अन्दर से) प्रकाशित कर दो ! भगवान लकुटीश के निवासस्थान को प्रकाशित कर दो !!

ब्राह्मणों के साथ प्रवेश करता है, सेवक दिये जलाते हैं। मठाधीश थाल में से दिये लेकर मूर्ति के चरणों में रखता है।

(हाथ जोड़ कर) भगवान लकुटीश, एकलिंग के अवतार, विजय के देवता, मेवाड़ के रक्षक, उसकी भूमि को उर्वरा बनाने वाले, उसकी नदियों में वेग, उसके सरोवरों में अनन्त जल-राशि, उसके पहाड़ों में सप्त-धातु, उसके वृक्षों में फल, उसकी लताओं मे फूल देने वाले, उसकी प्रजा को धनधान्य से सम्पन्न करने वाले! तुझे बारम्बार नमस्कार है !!

सिर झुकाता है।

—भगवान ! आज तुम्हारी कृपा से मेवाड़ का भाल एक बार फिर उन्नत हुआ है। मेवाड़ ने मेदों* को परास्त करके वर्धन× पर विजय-पताका फहराई है। राणा लक्षसिंह का रण-

घोष जिसने शत्रुओं का धैर्य विध्वंस कर दिया, अब भी युद्ध-भूमि मे गूँज रहा है और कुमारो के युद्ध-कौशल की धाक देश भर में बैठ गई है। आज उग्र तेज वाले महाराणा, विजयी होकर, वीर शिरोमणि युवराज चण्ड ॐ और कुमार राघवदेव के साथ राजधानी लौटे हैं। प्रार्थना है भगवान, तुम्हारी कृपा मेवाड़ पर इसी प्रकार बनी रहे। उसके महाराणा सदैव विजयी हो और शत्रु पराजय का मुँह देखें।

पुनः नत-मस्तक होता है।

(सेवकों से) ले आओ, ले आओ, दियो का थाल ले आओ! भगवान लकुटीश की आरती उतारें।

सब आरती उतारते और गाते हैं।

जय लकुटीश

जय जय जय जय जय लकुटीश

हे शिव, हे शंकर, हे ईश

जय लकुटीश

जय जय जय जय जय लकुटीश

लकुट दंड है तेरे साथ

विजय, पराजय तेरे हाथ

हम सेवक हैं तेरे नाथ

हम पर कृपा करो जगदीश

जय जय जय जय जय लकुटीश

पट-परिवर्तन

ॐ कुमार चूड़ावत।

एक उपवन

विजय के उपलक्ष में खुशियाँ मनाई जा रही हैं, दो कुञ्जों के मध्य रंगशाला बनी है; भीड़ इकट्ठी हो रही है।

दो नागरिक प्रवेश करते हैं।

एक—(भीड़ की ओर देख कर) आज वर्धन की विजय के उल्लास मे चित्तौड़ की गलियो मे, बाजारो मे, बागो और वाटिकाओ में आह्लाद का नृत्य हो रहा है। गायक और नर्तक अपने-अपने स्थान पर अपनी कला का चमत्कार दिखा रहे हैं, पर दर्शको के लिये, श्रोताओ के लिए एक ही स्थान पर जमना ठीक नहीं, उन्हे तो चल फिर कर रसास्वादन करना चाहिये (साथी से) यह देखो यहाँ अभी से कितनी भीड़ जमा हो गई है। भारमली यहीं तो गाएगी। चलो चलो, शीघ्र चल कर अच्छी जगह प्राप्त कर लें।

आगे बढ कर जगह बनाते हुए बैठ जाते हैं।

दो और नागरिक प्रवेश करते हैं।

एक—अरे भारमली यहीं गाएगी, चलो, अब यहीं बैठें।

बढ कर बैठते हैं।

एक आवाज़ (नेपथ्य में) कुमार राघवदेव की जय।

दूसरी आवाज (नेपथ्य में) मार्ग छोड़ दो, मार्ग छोड़ दो !

भीड़ में 'कुमार आगए', 'कुमार आगए' का शोर।

सब उठकर खड़े हो जाते हैं। रंगशाला का

संयोजक आगे बढ़ता है।

रणमल, बाघसिंह, पदाधिकारियों तथा अन्य सैनिकों

के साथ कुमार राघव का प्रवेश।

संयोजक—आइए, पधारिए ! इस स्थान को अपने चरण-कमलो से पवित्र कीजिए !

कुमार—मुझे ठहरना नही, मुझे जाना है, नगर के दूसरे हिस्सो का दौरा करना है। मन्त्रि-मण्डल की बैठक मे शामिल होना है।

एक अधिकारी—प्रातः से सन्ध्या तक चलते-चलते दोनो हाथो से निर्धनो, दीन-दुखियो, विपन्नों को दान देते-देते कुमार, आप थक गए होगे, अब ठहरिए, सुस्ता लीजिए !

भारमली मंच पर आती है, रणमल उसकी ओर

टकटकी लगा कर देखता है।

दूसरा अधिकारी—हाँ, हाँ कुमार अब आप विश्राम कीजिए।

कुमार—जीवन मे विश्राम कहाँ सामन्त जी, ठहरना, सुस्ताना कहाँ ? निरन्तर, अथक चलते रहना ही तो जीवन है, ठहरना तो मृत्यु है, ठहरना तो...

भारमली की ओर कुछ क्षण देखते हैं, फिर आँखें नीची कर

लेते हैं, मुख पर लाली दौड़ जाती है।

संयोजक—और नहीं तो हमारे लिये ही, हमारे उल्लास को अपनी उपस्थिति से वढ़ाने के लिये ही आप ठहरे । नगरी * की प्रख्यात गायिका समस्त भारत मे अपनी कला का डंका वजाती हुई अभी हाल ही मे अपने देश को वापस आई है। विजय-दिवस के उपलक्ष में चित्तौड़-वासियों के मनोरंजनार्थ, उसके संगीत की आयोजना की गई है।

कुमार एक वार फिर भारमली की ओर देखते हैं। फिर,
रणमल की ओर, और मुसकराते हैं।

कुमार—मेरा खयाल है कि मंडोवर-कुमार कुछ क्षण वैठना चाहते हैं। अच्छा, तो मैं भी कुछ देर के लिये वैठूँगा, परन्तु मुझे जाना है, मन्त्रि-मंडल की वैठक आरम्भ हो गई होगी। वे लोग मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

एक कुंज में कुमार के वैठने का प्रबन्ध किया जाता है। सितार,
तम्बूरे और दूसरे साजों की मधुर ध्वनि मंच पर गूँज
उठती है और भारमली गाती है।

मानस के परदों पर छाओ,
विंध जाओ उर के तारों में।
आँसू बन कर ही आ जाओ,
नयनों के कारागारों में !
रस बन, मलयानिल के रथ पर,
आओ आओ मेरे मानी !

* मेवाड़ का एक नगर।

मेरे जीवन का सूनापन,
हो मुखरित कह नयी कहानी

सब तन्मय होकर सुनते हैं। रणमल अनिमेष दृगों से
भारमली को देखती है। वह कुमार को
देखती हुई गाती है—

विस्मृति में स्मृतियों का रव हो,
जाग पड़ें सब सोए सपने।
मैं अतीत के फिर वैभव को,
पा ही लूं अन्तर में अपने!

'धन्य है', 'धन्य है' की ध्वनि।
कुमार उठते हैं, सामन्त से कुछ पूछते हैं।

सामन्त—(ऊँची आवाज से) कुमार अतिप्रसन्न हुए। भारमली जो चाहती हैं, निःसंकोच कहे। जितने धन की आवश्यकता हो बताएँ?

संयोजक भारमली से पूछता है, वह कुछ बताती है।

संयोजक—वह धन नहीं चाहती।

सामन्त—तो?

संयोजक—वह भ्रमण करके थक गई है। वह कुछ देर के लिये विश्राम चाहती है, यदि कुमार कृपा करके महलो मे ही.. ....

कुमार—मैं समझ गया, मैं माता जी से कहूँगा। (सामन्त से) चलिए देर हो रही है, हमारी प्रतीक्षा होती होगी। (रणमल से) और आप तो अभी बैठेंगे ही हाँ-हाँ, बैठिए। मैं केवल सामन्त

जी और सेवकों के साथ जाता हूँ। (एक सैनिक से) मंडोवर-कुमार की सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखना!

बिना किसी की ओर देखे चले जाते हैं, भारमली उनकी ओर देखता रहता है और फिर जाने लगती है।

श्रोताओं में शोर मच जाता है।

एक—अभी नहीं, अभी नहीं।

दूसरा—एक और मधुमय मादक गान।

तीसरा—शुष्क धरती की प्यास चन्द बूंदो से न बुझेगी, देवि! उसे तो अमृत-वर्षा चाहिए।

भारमली गाती है—

सिखा दो ऐसी मीठी तान!
विह्वलता मे जिसको गाकर,
पागल हों ये प्रान!
सिखा दो ऐसी मीठी तान!

पट-परिवर्तन

३

मन्त्रि मण्डल की बैठक

प्रधान मन्त्री—क्यो केशव जी, आपका क्या विचार है ? सन्ध्या होने को आई है और कुमार अभी तक नही पधारे, तो क्या उनकी अनुपस्थिति मे ही इन विषयों पर भी विचार होने दिया जाए ......

झोटिंग भट्ट*—कुमार को आना चाहिए था।

मन्त्री—अथवा इस अन्तिम विषय को कल पर स्थगित कर दिया जाए ?

धनेश्वरराय—नही, अमात्यवर, स्थगित नही। ऐसे महत्वपूर्ण विषय को कल पर न टालना चाहिए। महाराणा लक्षसिह के राज्यकाल मे मेवाड़ मे सर्वत्र शान्ति का निवास है; शत्रुओं के साहस ढीले पड़ गए हैं, बाह्य-आक्रमणो का डर नही रहा और वर्षो के विपत्तिमय जीवन के पश्चात् मेवाड़ को सुख की साँस मिली है, इस समय विरोधियो का,

---

* झोटिंग भट्ट दशपुर (दशोरा) जाति के ब्राह्मण थे। इनका वास्तविक नाम कीर्तिमान केशव था। यह बहुत सी विद्याओं में निपुण थे और अनेक शास्त्रार्थों में विजयी हुए थे। इनको झोटिंग भट्ट कहा जाता था। महाराणा लक्षसिंह ने इनको पिपली गाँव और धनेश्वरराय को पंच देवालय गाँव दिया था। ये बड़े राजभक्त थे। (राजपूताने का इतिहास)

मेवाड़ की उन्नति तथा प्रगति से ईर्षा रखने वालो का इतनी भारी संख्या मे आना आशंका से रहित नहीं। इससे शान्ति भंग होने की संभावना है। वह शीघ्र हो अथवा कुछ देर बाद, पर वह होगी, दूरदर्शिता कह रही है, वह अवश्य होगी।

झोटिंग भट्ट—उनका आगमन अच्छा नहीं—यह अशान्ति लाएगा, यह विपत्ति लाएगा। नक्षत्र कह रहे हैं, आसार कह रहे हैं। जो युद्ध से न हो सका वह यों होगा। ओह! भविष्य के गर्भ मे क्या छिपा है? भगवान एकलिंग हमारी रक्षा करें, भगवान एकलिंग ....

मन्त्री—घबराएँ नही कीर्तिमान जी! मेरे विचार में कुछ और राघव कुमार की प्रतीक्षा की जाए, उनकी जो राय हो वह युवराज तक पहुँचाई जाए और यदि वे माने तो फिर महाराणा से अनुरोध किया जाए कि बैठे बिठाए यह विपत्ति मोल न ले। दूध देकर विषधरो को न पाले!

झोटिंग भट्ट—दस सहस्र डोडी! मेवाड़ की राजधानी चित्तौड़ मे!! वे किसी वेष मे आए हो, वे असहाय बन कर आए हो, वे भिखारी बन कर आए हो, पर अवसर मिलने पर वे काटेंगे, मौका मिलने पर डंक चलाएँगे।

निराशा से सिर झुका लेते हैं।

कोषाध्यक्ष—जितनी देर मे कुमार आएँ, ज़रा इस बात पर भी विचार कर लिया जाए।

मन्त्री—हाँ, हाँ, कहिए आप क्या कहना चाहते हैं ?

कोषाध्यक्ष—महाराणा ने युवराज के कहने पर रानी पद्मिनी के महलों के भग्न-खंड दोबारा बनाने की आज्ञा दी थी, इस पर अनुमान से कही ज्यादह खर्च हुआ· ....

मन्त्री—हूँ !

कोषाध्यक्ष—अब युवराज का अनुरोध है कि महलो के खँडहरों मे, जो बन सकते हो, वे ज़रूर बनाए जाएँ।

मन्त्री—फिर ?

कोषाध्यक्ष—छोटे कुमार किसानो की सुविधा के लिए पानी के और बाँध बनवाना चाहते है और स्वयं महाराणा ने सीमान्त पर किलो के निर्माण की आज्ञा दे रखी है।

मन्त्री—मुझे मालूम है।

कोषाध्यक्ष—यह सब कुछ एक साथ न आरम्भ हो सकेगा।

मन्त्री—क्यो ?

कोषाध्यक्ष—कोष मे इतना रुपया नही। आमदनी से खर्च ज्यादह हो चुका है।

मन्त्री—जावर की कानें ....

कोषाध्यक्ष—पिछले वर्ष तक निकली हुई चाँदी से जो आय

हुई वह सब समाप्त हो चुकी है। आज तक बीसियों कुण्ड, बाँध, सरोवर, झीलें और दुर्ग बनाए जा चुके हैं; बीसियों मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया गया है, नये महल बनाए गए हैं; पिछोला झील पर रुपया लगाया गया है; आखिर यह सब खर्च कहाँ से आता है? जावर की चाँदी की आय ही से तो। लगान से तो राज्य का काम भी नहीं चल सकता।

नेपथ्य में—कुमार राघवदेव की जय! कुमार राघवदेव की जय!!

सब—लो कुमार आ गए।

सब उठ कर खड़े होते हैं।

सेवकों और सामन्तों के साथ कुमार राघवदेव का प्रवेश।

सेवक बाहर चले जाते हैं।

मन्त्री—(अभिवादन करते हुए) आपने बड़ी बाट दिखाई देव? सब विषयों पर विचार हो चुका है।

कुमार—मैं सामन्तों से माफी माँगता हूँ। मैं विवश था लोक-प्रियता का मार्ग बड़ा कठिन है मन्त्रिवर! इसमें फिसलन है, कीचड़ है, और गढ़े हैं। कर्तव्य को ही अपना पथ-प्रदर्शक बना कर चलना पड़ता है। नगरी की प्रख्यात गायिका भारमली का संगीत हो रहा था और मैं उनका अनुरोध न टाल सका।

मन्त्री—सेवको के अनुरोध का मान रखना ही स्वामियों की सहृदयता है और कुमार उदाराशय है ! (कोषाध्यक्ष से) हाँ आप अपनी बात जारी रखें !

कोषाध्यक्ष—मैं कह रहा था कि एक ही तरीके से सब काम भली-भाँति पूरे हो सकते हैं ।

मन्त्री—कैसे ?

कोषाध्यक्ष—यही कि लगान बढ़ा दिया जाय ।

कुमार—(चौंक कर) लगान बढ़ा दिया जाय, क्यों पृथ्वीनाथ जी, ऐसी कौन सी मुसीबत आ पड़ी है जिससे बेचारे किसानों पर अधिक बोझ डालना अनिवार्य हो गया है ।

कोषाध्यक्ष—इतने काम एक साथ कैसे आरम्भ हो सकते हैं, कुमार ! रावल रत्नसिंह के महलों का पुनर्निर्माण, नये बाँध और दुर्ग बनाना । कोष मे इन सब कामो का बोझ उठाने की शक्ति नहीं । इसके अतिरिक्त और कोई साधन दिखाई नही देता ।

कुमार—(कुछ सोच कर) बाँध बेहद ज़रूरी हैं । अनावृष्टि के दिनो मे किसानों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा । और दुर्ग, मेवाड़ को सदैव बाह्य-आक्रमणो से सुरक्षित करने के लिये उनका निर्माण भी जरूरी है और खँडहर—खैर मै युवराज से बात करूँगा और जो निश्चय होगा, उसकी सूचना आपको दे दी जाएगी ।

लक्षसिंह—तुमने ठीक ही कहा रानी! वास्तव मे राज्य मैं नहीं करता। मैं तो नाम का राजा हूँ। राज्य तो तुम्हारे दोनों कुँवर करते हैं। मैं इन्हीं दो आँखों से देखता हूँ, इन्हीं दो कानों से सुनता हूँ और इन्ही के मस्तिष्क से सोचता हूँ। यह जो कुछ तुम्हे मेवाड़ मे दिखाई दे रहा है, यह सब सुधार और पुनर्निर्माण—इन पर हस्ताक्षर तो मेरे हैं, पर इन्हे लिखाने वाला प्रेरणा का हाथ कुमारों ही का है।

रानी—महान् आत्माएँ अच्छे कामो का श्रेय आप नहीं लिया करतीं।

लक्षसिंह—नही रानी! मैं महान् नहीं और मै तो सोचा करता हूँ कि मैं विचारक, सुधारक अथवा प्रवन्धक कुछ भी नहीं। मै तो केवल सिपाही हूँ, तलवार पर भरोसा रखने वाला, बात पर कट मरने वाला राजपूत सिपाही! और जो कुछ मैं समझा जाता हूँ, अथवा समझा जाऊँगा, वह सब कुछ मैं नहीं हूँ।

रानी—आप सैनिक हैं, मुझे इस पर खेद नहीं। मैं अपने सैनिक स्वामी पर गर्व करती हूँ। कौन राजपूतनी है जिसका हृदय इस ख़याल से फूल न उठता होगा कि उसका

पति सच्चा राजपूत है । वह घर मे बैठने वाला भीरु, कायर और डरपोक व्यक्ति नहीं, बल्कि अपने देश के हित, मान के हित और मर्यादा के हित प्राणों को अकिंचन समझने वाला वीर राजपूत है, परन्तु आप तो सच्चे सिपाही होने के साथ प्रजा-वत्सल, कर्तव्य-परायण शासक भी हैं, इस बात को मैं कैसे भूल सकती हूँ ?

लक्षसिंह—हम तीनों बाप बेटे क्या हैं रानी, इस बात का पता हमारी रुचियो से चल जायगा । हम जो कुछ करते हैं, जो कुछ बनाते हैं, उससे हमारा व्यक्तित्व भली भाँति झलकता है । युवराज सच्चा राजपूत है और राजपूत संस्कृति पर जान देता है । मेवाड़ के पुराने खँडहर—जहाँ राजपूतों का रक्त बहा है उसे अत्यन्त प्रिय हैं और उनकी रक्षा को वह देश का सबसे महत्वपूर्ण काम समझता है । राघव प्रबन्धक और सुधारक है । उसके प्रेम की वस्तु जनता है और उसे सुखी बनाना उसके जीवन का चरम-ध्येय है । रहा मैं—मैं तो लड़ाका हूँ, युद्ध से जिस चीज का सम्बन्ध है वह मुझे प्रिय है । मेरे बनाए हुए दुर्ग मुक्त-कंठ से मेरे कथन की गवाही देंगे ।

रानी—मैं अपने योद्धा राना पर गर्व करती हूँ । मुझ से प्रसन्न कोई नहीं ।

लक्षसिंह—परन्तु रानी जानती हो, कुमारों की इच्छाओं के आगे मैं अपनी अभिलाषाओ से हाथ खींच लेता हूँ । अभी हाल

ही मे मैंने सीमा पर नए दुर्ग बनाने की आज्ञा दी थी, परन्तु युवराज ने अलाउद्दीन के प्रलयकारी हाथो से विध्वंस किए गए रावल रत्नसिह के भग्न महलो को दोबारा बनवाने की इच्छा प्रकट की और कुमार राघव किसानो के लिए बाँध बनवाने का अनुरोध करने लगा। कोप में इतना धन था नहीं, कुमारो को मै दुखी न करना चाहता था, विवश होकर अपनी इच्छा मुझे अगामी वर्ष के लिए स्थगित करनी पड़ी।

रानी—आपको अपने पुत्रो से अपार प्रेम है।

लक्षसिंह—नहीं रानी, प्रेम तो अपनी सन्तान से सभी को होता है। मुझे तो उनसे प्रेम ही नही वरन् उन पर श्रद्धा भी है। मुझे उन पर गर्व है। उनको देख कर प्रसन्नता से मेरी छाती फूल उठती है।

रानी—और मेरे पुत्र भी, महाराज! बड़े पितृ-भक्त हैं। समय आने पर वे अपना सर्वस्व अपने पिता की साधारण सी इच्छा पर न्योछावर कर सकते हैं।

लक्षसिंह—मैं खुश हूँ, अति प्रसन्न हूँ।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराज, प्रधान मंत्री कुछ बात करना चाहते हैं।

रानी—उन्हे इधर ही ले आओ!

दासी का प्रस्थान

रानी—हेमलता को अपने राज्य से आए कई दिन हो गए, मै उस से उधर का हाल भी न पूछ सकी । कुछ ही दिन तो रहेगी वह, मै चलती हूँ (उठती है ।) यह भी देखूँगी कि हमारी सुकेशी कुछ गुनगुनाने भी लगी है या नही। भारमली को आए तो काफी दिन हो गए है।

लक्षसिंह—भारमली कौन ?

रानी—सुनती हूँ नगरी की प्रसिद्ध गायिका है । इतनी सी आयु मे इतनी निपुणता ! महाराज, गाती है तो जादू फूँक देती है । मैने छोटे कुमार के अनुरोध से उसे महलो मे रख लिया है।

प्रस्थान

अमात्य प्रवेश करते है और महाराणा को अभिवादन
करते हुए एक आसन पर बैठते हैं।

लक्षसिंह—आओ अमात्यवर, आज ऐसे समय मे कैसे पधारे ?

प्र० मन्त्री—महाराज, एक कठिन समस्या उपस्थित है । आपने मंडोवर-कुमार रणमल को अपने यहाँ आश्रय दिया है . ...

लक्षसिंह—(कुछ चौंक कर) क्यो इसमे क्या बुराई है ?

प्र० मन्त्री—मंडोवर के राव चूडावत, वाहर से चाहे कुछ हो, परन्तु हृदय मे हम से ईर्षा रखते हैं।

लक्षसिंह—यह और भी कारण है कि उनके ज्येष्ठ पुत्र को आश्रय दिया जाए, जिसे उन्होने केवल छोटी रानी के प्रेम से वशीभूत होकर राज्याधिकार से च्युत करके अपना देश छोड़ने पर विवश कर दिया है। समय आने पर रणमल को मंडोवर का राणा घोषित करके मंडोवर को अपने अधिकार मे लाया जा सकता है।

प्र० मन्त्री—किन्तु पण्डित कीर्तिमान ने कहा......

लक्षसिंह—(तनिक आकुलता से) उन्होने क्या कहा है ?

प्र० मन्त्री—कि यदि रणमल मेवाड़ मे रहे तो मेवाड़ पर कोई अज्ञात विपत्ति आएगी।

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आएगी ?

प्र० मन्त्री—हाँ महाराज, वे ऐसे कहते हैं।

लक्षसिंह—अज्ञात विपत्ति आएगी, परन्तु शरण मे आए हुओ को आश्रय देना तो राजपूतो का कर्त्तव्य है, असहाय की सहायता करना तो उनका धर्म है। राजनीनि को छोड़ भी दिया जाए तो धर्म और मर्यादा को कैसे छोड़ा जा सकता है ? (सोचते हैं।) युवराज से पूछा ?

प्र० मन्त्री—हाँ महाराज !

लक्षसिंह—उन्होंने क्या कहा ?

राणा—युवराज ने कहा......

युवराज का प्रवेश

युवराज—जो मैंने कल कहा था, वह आज भी कहता हूँ।

पिता जी ! हम राजपूत हैं; राजपूतो मे श्रेष्ठ हैं, मेवाड़ जैसे राज्य के अधिपति हैं, यदि हम आश्रितो को आश्रय न देंगे तो और कौन देगा ?

प्र० मन्त्री—किन्तु कीर्तिमान .....

युवराज—अनिष्ट की आशंका करते हैं, यही न ! मै कहता हूँ, अनिष्ट की आशंका न हो, बल्कि निश्चय हो तो क्या राजपूत अपनी मर्यादा को छोड़ देगे ? क्या अपनी पराजय को सामने देख कर वे युद्ध से पीठ मोड़ लेगे ? यह जीवन तो एक संघर्ष है मन्त्रिवर ! अपने कर्त्तव्य के अनुसार युद्ध करनेवाला यदि हार भी जाय तो जीत उसी की है और कर्त्तव्य के पथ से विचलित होकर जीत जाने वाला भी पराजित है, हारा हुआ है !

लक्षसिंह—राघव की क्या सम्मति है ?

युवराज—राघव की सम्मति क्या होगी पिता जी ! वह क्या राजपूत नही, उसकी नसों मे क्या सूर्यवंशी लहू नही दौड़ता, और सुनिए मन्त्री जी ! हमे रणमल को न केवल आश्रय देना है, बल्कि अवसर पड़ने पर मंडोवर का राज्य भी दिलाना है।

प्र० मन्त्री—परन्तु रणमल शायद सच्चा राजपूत सिद्ध न हो।

युवराज—न सही, हमे अपने कर्त्तव्य से काम है, दूसरे के कर्त्तव्य से नहीं। यदि दूसरा अपने कर्त्तव्य का पालन न करे तो क्या हम भी न करेंगे ?

प्र० मन्त्री—उसके चरित्र पर भी शंका की जा सकती है। मैं जानता हूँ, मेरे पास प्रमाण हैं।

युवराज—इससे क्या प्रयोजन है मन्त्रिवर! जिसे आश्रय दे दिया, दे दिया, फिर वह कैसा दुष्ट क्यो न हो, कैसा भी खल क्यो न हो, आश्रय-दाता का काम तो आश्रय देना है उसके गुण दोषो का विवेचन करना नही।

तेजी से प्रस्थान

प्र० मन्त्री—तो महाराज ..

लक्षसिंह—मैं क्या राजपूत नहीं अमात्य, आप क्या राजपूत नहीं हैं? जाइए मंडोवर-कुमार के रहने का प्रबन्ध कीजिए। राजपूतो के सिद्धान्त अनिष्ट के आगे कभी ढीले नही पड़े।

मन्त्री - जो आज्ञा।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

५

वाटिका में झरने के किनारे श्वेत चबूतरा

भारमली सितार से सिर लगाए तन्मय-भाव से गा रही है—

आज हृदय में उठ-उठ आते,
आँखों के पथ से बह जाते,
ये मेरे उद्गार !
पागल,
ये मेरे उद्गार !
झंझा उठती है मानस में,
आज नहीं जी अपने बस में,
टूट चले सब तार !
पागल,
ये मेरे उद्गार !

रणमल का प्रवेश

रणमल—भारमली !

भारमली—(चौंक कर) कौन, मंडोवर कुमार !

रणमल—नही रुक सका भारमली । यह चाँदनी रात, यह उज्ज्वल झरना, यह मन्द समीर ! मैने लेटना चाहा, लेट न सका, सोना चाहा, सो न सका, आँखे बन्द कीं, पलक भारी न हुए, नस नस में रोम रोम मे एक ज्वाला धधक रही है और तुम्हारा यह

करुणापूर्ण गीत बयार के उन्मत्त झोंको की भाँति उसे भड़का रहा है।

उसे कंधे से छूता है, तड़प कर भारमली उठ खड़ी होती है।

भारमली—मंडोवर-कुमार !

रणमल—आँखों को मूर्तिमान क्रोध बना कर ज्वाला जैसी दृष्टि से मुझे न देखो भारमली ! मैं तो तुम्हारी एक सहानुभूति-पूर्ण निगाह का भिखारी हूँ, यह आग जैसी दृष्टि मुझ पर न डालो। अग्नि को बुझाने के लिए शीतल जल की आवश्यकता होती है, आग से आग कब बुझ सकेगी ?

भारमली—रात के समय यहाँ आने का दुस्साहस आपको कैसे हुआ कुमार ? आपको लज्जा नहीं आती।

रणमल—मैंने पहले कहा ना भारमली ! मैं नहीं रुक सका। मैने चाहा मैं न आऊँ, यह दुस्साहस न करूँ, निर्वासित मैं, आश्रित मैं—पर तुम्हारा गीत, तुम्हारे सुन्दर सुषमा से बने हुए मुख की कल्पना, आकाशगामी चाँद के सामने धरती के इस चाँद को देखने की लालसा, मै नहीं रुक सका, अपने पर नियन्त्रण नहीं रख सका।

आगे बढ़ता है।

भारमली—(पीछे हटती हुई) मंडोवर-कुमार, मंडोवर-कुमार !

बढ कर उसे कन्धों से थाम लेता है, भारमली झटका
देकर उसे धकेल देती है।

—वहीं खड़े रहो राठौर, वरना अच्छा न होगा !

रणमल—मैं तुम्हे कुछ कहता तो नहीं भारमली ! मै तो—

तेज़ी के साथ राघव का प्रवेश
'कुमार', 'कुमार' कह कर भारमली डरी हुई मृगी के
समान उसके पास जा खड़ी होती है

राघदेव—(रणमल को देख कर) मंडोवर-कुमार !

रणमल—चुप।

राघवदेव—ऐसा साहस फिर कभी न करना कुमार ! तुम हमारे अतिथि हो, नहीं तो ......लज्जा तुम्हारे पॉव की जंजीर बन जानी चाहिए।

क्रोध से मुख तमतमा जाता है, रणमल धीरे धीरे खिसक जाता है।
राघवदेव और भारमली निमिष-मात्र के लिये एक दूसरे को
देखते हैं और फिर आँखें नीची कर लेते हैं।

राघवदेव—मै जाता हूॅ देवि, मै फिर चेतावनी दे दूँगा। अब राठौर को कभी ऐसा साहस न होगा !

चलते हैं।

भारमली—कुमार !

रुक कर कुमार उसकी ओर देखते हैं।

राघवदेव—कोई और बात है देवि !

भारमली चुप रहती है, कुमार तेज़ी से चले जाते हैं।

भारमली—(निश्वास लेकर) कुमार, कुमार, ओह ! मै बात न कर सकी, कितना चाहती थी, पर बात तक न कर सकी !

लम्बी साँस भर कर फिर चबूतरे पर जा बैठती है

और फिर गाने का प्रयास करती है—

जाओ मैं क्या रोक सकूँगी

क्या कह कर मैं टोक सकूँगी,

क्या मेरा अधिकार ?

पागल,

ये मेरे उद्गार !

सितार रख देती है।

—नही गाया जाता, जिह्वा कुछ कहती है, मन कुछ कहता है, वह मन का साथ नही देती, मन उसका साथ नही देता। (फिर दीर्घ निश्वास छोड़ती है)

सितार उठा कर धीरे धीरे चली जाती है।

रणमल एक वृक्ष के पीछे से निकलता है।

रणमल—(धीरे धीरे टहलता हुआ जैसे अपने से) चली गई। चली जाओ, किन्तु स्मरण रखना भारमली ! एक दिन तुम्हे मेरी होना होगा और कुमार ! तुम्हें मेरे मार्ग से हट जाना होगा. नहीं तो मैं स्वयं हटा दूँगा, सदैव के लिये इस मार्ग से हटा दूँगा।

पट-परिवर्तन

६

मडोवर की एक राज्य वाटिका

बड़ी रानी कुसुम और उसकी दासी रेवा

रानी—झूठ कहती हो रेवा, अब वे दिन गए। पक्षी अपने भाग्याकाश की पूरी बुलन्दी पर उड़ चुका। अब तो वह गिरता जाएगा और कौन जाने पतन के पाताल की किन गहराइयो मे जा पड़े?

दासी—बेचैन न हो महारानी!

रानी—बेचैन! (विषाद से मुसकराती है) अब बेचैन होने से क्या लाभ? कभी समय था, जब मेरी जरा सी बेचैनी से मडोवर के महलो की अट्टालिकाएँ तक कॉप जाती थीं। तब यह बेचैनी कुछ महत्त्व रखती थी। अब इससे क्या लाभ? कुचला हुआ साँप विष घोलेगा तो स्वयं ही शक्ति-हीन होगा, पख-हीन पक्षी तड़पेगा तो अपने ही को घायल करेगा!

दासी—महारानी! वे दिन फिर आ सकते हैं।

रानी—नही रेवा, उड़ चुकी, खूब उड़ चुकी, अब और उड़ने की लालसा नहीं। सोचती हूँ, यदि विधि को यह पतन ही दिखाना था, तो उसने यह विशाल ऊँचा आकाश दिखाया ही क्यो? यदि विष का यह कड़वा घूँट ही पिलाना था तो सुधामृत चखाया ही क्यो?

दासी—बेचैन न हो महारानी !

रानी—अब महारानी कहाँ ? जब महाराज मेरे थे, तब मैं महारानी थी। अब तो वह गुहिल-वंशीय रानी के इशारों पर नाचते हैं, अब वह सुन्दरता के पुजारी हैं, तब फिर महारानी कहाँ ? जिसके देखते-देखते उसकी सौत का पुत्र, छोटा होते हुए भी, युवराज बना दिया जाए, जिसके महलों मे महाराज कभी भूल कर भी पॉव न रखें, वह महारानी कहॉ ? वह एक दासी से भी गई-गुज़री है। दासी और इस अधिकार-हीन रानी मे अन्तर ही क्या है ? दासियाँ भी महलो मे रहती हैं, यह भी महलो में रहती है। बड़ी दासियाँ छोटी दासियो पर शासन करती हैं, यह भी करती है। इसे एक बड़ी दासी समझ लो।

दासी—आप महारानी ही हैं। हंस पंख-हीन भी होजाए तो हंस ही कहाता है, कौआ नहीं कहाता, चलिए, उन आमो की शीतल छाया मे बैठे। आप स्वस्थ नहीं हैं।

रानी—(दीर्घ निश्वास छोड़ कर) तू नहीं जानती रेवा, मेरे हृदय मे कौन सी ज्वाला धधक रही है, कौन सी झंझा उठ रही है। (धीरे धीरे) कुँवर चला गया—अपनी मॉ को अकेली छोड़ कर, अपना भाग्य-निर्माण करने के लिये चला गया। मैं उसे रोक तक न सकी......

दासी—रणमल वीर राजपूत है महारानी! सिंहासन वस्तु ही क्या है? यह तो पुरुषो की शक्ति का खिलौना-मात्र है। पुरुषो के हाथों

राज्य बनते और बिगड़ते आए हैं। राज्य पुरुषो के लिये बने है, पुरुष राज्यो के लिये नही बने। कुँवर वीर राजपूत हुए तो अपने अधिकार स्वयं प्राप्त कर लेगे। अधिकार मिलते नहीं, लिए जाते हैं।

रानी—रेवा! तुमने मेरे हृदय का ताप हर लिया। क्या ऐसा हो सकेगा? क्या मैं फिर अधिकार-युक्त पुत्र का मुँह देख सकूँगी? इस तप्त हृदय मे फिर ठंडक पड़ेगी? चलो वहाँ आमो की छाया में बैठे।

दोनों आमों की छाया में बैठती हैं।

रानी—रेवा! कुछ गाओ—कोई मीठा मादक गीत! जिस से हृदय की जलन दूर हो जाए, जिससे मस्तिष्क का क्लेश मिट जाए; जो कुछ क्षण के लिये दुखो को भुला दे, विस्मृति के गर्त मे गुम कर दे।

रेवा गाती है।

पतन में अवसित है उत्थान!
चढ़-चढ़ गिरना, गिर-गिर चढ़ना, जीवन का आख्यान।
पतन में अवसित है उत्थान!

उठने पर क्यों खुश होता है?
गिरने पर तू क्यों रोता है?
जीवन तो बहता सोता है!

एक दशा में नहीं रहेगा, मान मान मतिमान
पतन में अवसित है उत्थान

रानी—शायद ठीक हो किन्तु इस पतन में उत्थान होगा या नहीं, कौन यह सकता है ? (सामने देख कर) वे महाराणा आ रहे हैं, चलो चलें रेवा।

दोनों उठ कर धीरे धीरे चली जाती हैं।

छोटी रानी के साथ राव चूड़ावत का प्रवेश !

राव—तो तुम्हारा यही निश्चय है। मेवाड़ के दोनों कुमारों की ख्याति अपने देश की दोनों सीमाओं को पार करके दूर-दूर पहुँच चुकी है। उनकी तलवार का लोहा, यवन, जोगा दुर्गाधिप, मेदों के सरदार तथा दूसरे मान चुके हैं, किन्तु मैं चंड से राघव को ज्यादह पसन्द करता हूँ। मैंने उनकी सुन्दरता, उसके दान, उसकी वीरता और अन्य गुणों की कहानियाँ सुनी हैं, वह कलाकार है और चंड, वह तो राजपूत है—सीधा साफ़ सोलह आने राजपूत—बात का धनी, साहसी और निडर। उसमें रस होगा, मैं नहीं कह सकता। हाँ ! उसमें कर्तव्य है, पत्थर की तरह सख्त चट्टान की भाँति दृढ़ ! अब सोच लो !!!

रानी—क्या राघव मेवाड़ के राजा होंगे ?

राव—वह चंड से छोटा है। युवराज तो चंड ही है। राघव को, हो सकता है, अच्छी जागीर मिल जाए

परन्तु मेवाड़ का भावी राणा तो चंड ही होगा।

रानी—तो हंसाबाई का विवाह उन्हीं से हो! वे राजपूत हैं, यही यथेष्ट है। वे ललित-कलाओ के इतने पोषक न हो, किन्तु राजपूत तो वे सच्चे हैं, और फिर वे केवल जागीरदार न होगे, मेवाड़ के भावी राणा होगे।

राव—जैसी तुम्हारी इच्छा! मैंने तुम्हारे इस प्रस्ताव के लिये क्या नहीं छोड़ा? अपना मान नहीं छोड़ा? अपनी बड़ाई नही छोड़ी? फिर अपनी रुचि छोड़ने मे भी मुझे कोई संकोच नहीं!

रानी—महाराज, आप नारियल भिजवाइये! मैंने सुना है, वे न्याय-प्रिय, नीति-कुशल और प्रजा-वत्सल हैं। वे राणा हुए तो अपने कुल का नाम रौशन कर देगे। मेरी हंसाबाई ऐसे ही अधिपति की महारानी होगी। मैं स्वयं अधिकार की पुजारिन हूँ महाराज! और अपनी लडकी को दूसरो की ओर हाथ फैलाते नहीं देखना चाहती। आपका मान भी इसमे कम न होगा महाराज! मेरी बात का मान रखिए।

राव—मैं जाता हूँ। आज ही मन्त्री को नारियल भेज देने का आदेश दे दूँगा।

प्रस्थान

रानी—रणमल! तू जा, मेवाड़ का आश्रय ले, परन्तु वहाँ

भी तुम्हें इसी रानी की लड़की के अधीन रहना पड़ेगा। तू क्रोध से तिलमिला कर चला गया। तूने कहा—मैं अधिकार लूँगा, मैं बदला लूँगा—हाँ! बदला लेना। तुझे भी मालूम हो जायगा कि तारा से वैर ठानना हँसी खेल नहीं।

तेजी से प्रस्थान

पट परिवर्तन

पहाड़ की एक कन्दरा

बाहर नन्दी की मूर्ति बनी है,

कन्दरा के महराबदार मुहाने में एक

बड़े आकार का घंटा लटक रहा है।

झोटिंग भट्ट और धनेश्वर पण्डित

धनेश्वर--अँधेरा गहरा हो रहा है, आकाश मलिन हो गया है, सूरज डूब रहा है।

झोटिंग--काली रात होगी--अँधेरी काली रात!

धनेश्वर--और चाँद भी न होगा, अविवेक के बादल उस पर छा रहे हैं।

झोटिंग--फिर क्या जाने क्या हो?

धनेश्वर--कौन जाने क्या हो?

झोटिंग--अच्छा नहीं होगा, मैंने कह दिया था, मै कहे देता हूँ-अच्छा नही होगा।

धनेश्वर--(आतंक से) अच्छा नहीं होगा--हाँ! अच्छा नहीं होगा।

झोटिंग--कुछ भी हो, अब जब अज्ञान बुद्धि पर शासन जमा रहा है, हमे उसका साथ न देना चाहिए, अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए।

धनेश्वर--हाँ, हमने सिसोदियो का नमक खाया है। इस

समय जब वे अपना भला बुरा न सोच कर झूठी मर्यादा, कुल की झूठी प्रतिष्ठा के लिये मर रहे हैं, हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए, उन्हें इस विपत्ति से बचाने का प्रयत्न करना चाहिए।

झोटिंग—(निराशा से) किसी ने भी न सुना, कुमार, युवराज, राणा, सब के पास जाना व्यर्थ हुआ।

धनेश्वर—हमने अपना कर्तव्य पूरा कर दिया। अवसर पर उनको सावधान कर दिया अब भी हम अपना कर्तव्य पूरा करेंगे। आने वाली अज्ञात विपत्ति से मेवाड़ को बचाना होगा .....

झोटिंग—जिस की ओर शास्त्र संकेत कर रहे हैं, जो अवश्य आएगी, जो रोके न रुकेगी !

धनेश्वर—परन्तु भगवान एकलिंग का जाप करने से उसका प्रभाव तो कम हो जायगा। सम्भव है ग्रहों का कोप शान्त हो जाए, विपत्ति आकर टल जाए।

झोटिंग—मैं जाप करूँगा। उस समय तक जाप करूँगा, जब तक मेवाड़ के आकाश से ये बादल छट नहीं जाते (ऊपर देख कर) विपत्तियों की घटाएँ घिर आई हैं। आशंकाओं की आँधियां चल रही हैं और इनमें हृदय ऐसे काँप रहा है जैसे दो शेरों में भयभीत मृगी।

बादल गरजते हैं, बिजली चमकती है,

धनेश्वर आतंक से देखते हैं,

पटाक्षेप

द्वितीय अंक

१

नेपथ्य से गाने की ध्वनि

तेरे ही कारण भूपाल,
उन्नत हुआ जननि का मस्तक, हुआ पुनः मेवाड़ निहाल
तूने सींच शत्रु का लोहू, किया देश ऊषा सा लाल
तूने भरा पुन: माता का, सुख, वैभव गौरव से थाल
लाखा जी के लाल लोचनों से डरता है भैरव काल
आज हिमालय से ऊँचा है, माँ मेवाड़ भूमि का भाल
तेरे ही कारण भूपाल

लक्षसिंह—मन्त्री ! आज मैं बाहरी मामलो पर विचार करना चाहता हूँ। देश को सुधारने की ओर आजकल हमारा इतना ध्यान रहता है कि बाहर क्या हो रहा है, इस बात को हम भूल से गए हैं।

प्र० मन्त्री—महाराज, मेवाड़ की विजयों से शत्रुओ के दाँत खट्टे हो गए हैं और वह कुचले हुए साँप की तरह विष चाहे घोले, फन उठाएँगे, इस बात की सम्भावना नही।

लक्षसिंह—हमारी सीमाओं पर तो कोई गड़बड़ नहीं ?

प्र० मन्त्री—नहीं महाराज ! सब जगह शान्ति है, धनी निर्धन सब बेखटके अपना काम कर रहे हैं, शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं।

लक्षसिंह—कही तीर्थों पर यात्रियों को कोई असुविधा तो नही होती ? यात्री त्रिस्थलीं में बे-रोक-टोक दर्शन तो कर सकते हैं ?

प्र० मन्त्री—काशी और प्रयाग से तो कोई समाचार नहीं मिला महाराज ! हाँ सुना है कि गया को जाने वाले यात्रियों को फिर तंग किया जा रहा है। वहाँ के मुसलमान शासक उन्हे फिर कर देने के लिये विवश करते हैं।

लक्षसिंह—हमने इतना स्वर्ण, हाथी घोड़े और चाँदी देकर जो सन्धि की थी, वह क्या व्यर्थ हुई ?

प्र० मन्त्री—महाराज ! आपने सन्धि तो फ़ीरोजशाह तुग़लक से की थी, परन्तु उसके देहावसान के बाद दिल्ली में अन्धेर मचा हुआ है। तैमूर के भयानक आक्रमण के बाद दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न होकर रह गया है, इस लिये स्थानीय शासक यात्रियों को तंग करते हैं।

लक्षसिंह—तैमूर के सम्मुख रण-क्षेत्र से भाग जाने वाले इन भगोड़े मुसलमानों के विरुद्ध मुझे फिर शस्त्र उठाने

काशी, प्रयाग और गया।

पडेगे। मैं चाहता था, गया का पवित्र-स्थान यवनो के रक्त से नापाक न हो। (सोच कर, अपने आप) तो भी एक बार और प्रयास करूँगा और यदि वे इस पर भी न माने तो उन्हे इस उद्दंडता का उचित दंड दूँगा। (मन्त्री से) शासक को लिखो कि वह यात्रियो को तंग न करे। उसे धन की जरूरत है तो हम से ले ले।

प्र० मन्त्री—महाराज, वे न मानेगे।

लक्षसिंह- तो पुरानी प्रथा के अनुसार मै उन पर चढ़ाई करूँगा, इन अत्याचारियो को गया की पवित्र भूमि से निकाल दूँगा। काश! दूसरे लोग भी इस काम मे हमारी सहायता करते!

दरबान का प्रवेश

दरबान--महाराज! मंडोवर से एक ब्राह्मण नारियल लाए हैं।

प्र० मन्त्री—जाओ उन्हे सम्मान पूर्वक ले आओ।

लक्षसिंह—(मूछों पर ताव देते हुए, मुसकरा कर) युवराज के लिये होगा, हम वूढ़ो के लिये नारियल कौन लाएगा।

सब हँसते हैं।

धनेश्वर राय--महाराणा वधाई हो! आज मेरी चिरसंचित अभिलाषा पूरी हुई, राठौर और सिसोदिया वंश मे वैमनस्य दूर हुआ। परमात्मा करे, यह नाता चिरस्थायी रहे और दोनों देशो मे सुख, शान्ति तथा सम्पन्नता लाए।

सेवकों के साथ ब्राह्मण का प्रवेश, ब्राह्मण नारियल
का और सेवक रत्नों का थाल उठाए हुए हैं।
मन्त्री उठ कर ब्राह्मण का स्वागत करता है।
सब महाराणा का अभिवादन करते हैं।

लक्षसिंह—कहिए ब्राह्मण-श्रेष्ठ! मंडोवर से किसका नारियल लाए।

ब्राह्मण—महाराज की प्रतिष्ठा दिन दूनी रात चौगुनी हो! महाराज, मैं मंडोवर की राजकुमारी हंसाबाई का नारियल लाया हूँ।

युवराज चण्ड प्रवेश करते हैं
और अपने स्थान पर बैठ जाते हैं।

लक्षसिंह—युवराज के लिये लाए हो न? मैंने तो पहले ही कहा था कि हमारे लिये अब नारियल कौन लाएगा? हमें इन खिलौनो की क्या आवश्यकता है।

सब हँसते हैं।

ब्राह्मण—(झेंप कर) युवराज के लिये।

लक्षसिंह—हमें स्वीकार है।

ब्राह्मण युवराज को तिलक लगाने
के लिये आगे बढ़ता है।

युवराज—(उठ कर) किन्तु मुझे स्वीकार नहीं!

ब्राह्मण डर कर रुक जाता है।

लक्षसिंह—क्यों वत्स?

युवराज--(ब्राह्मण से) आप तिलक पिता जी को लगाइये !

सब आश्चर्य मे चौकते हैं, किन्तु स्तब्ध बैठे रहते हैं।

युवराज—हंसाबाई मेरी माता हो चुकी।

लक्षसिंह—पागल होगए हो क्या ?

युवराज—मैं पागल नही पिता जी ! आपने जिस नारी के लिये अपनी इच्छा प्रकट की, उसे मैं कैसे ग्रहण कर सकता हूँ।

लक्षसिंह—इच्छा ! मैने ?

युवराज—आपने कहा जो—'हम बूढ़ों के लिये अब कौन नारियल लाएगा ?'

लक्षसिंह निरुत्तर होकर मन्त्री
की ओर देखते हैं।

प्र० मन्त्री—युवराज ! महाराणा ने वह बात तो हँसी मे कही थी।

युवराज--मैंने उसे हँसी नही समझा अमात्यवर ! अब मै यह नारियल स्वीकार न करूँगा।

प्र० मन्त्री—यह कैसे हो सकता है युवराज ! हँसी हँसी मे...

युवराज--मन्त्रिवर ! हँसी हँसी मे यदि मैं किसी को अपनी माँ कह दूँ, तो क्या मै उस से किसी और नाते की कल्पना कर सकता हूँ ?

धनेश्वर--शिव, शिव !

प्र० मन्त्री--युवराज, लड़कपन न करो। हँसी की बात को गम्भीरता मे नहीं लेना चाहिए। इसके परिणाम पर विचार करो। विवेक और बुद्धि • ...

युवराज--मैं नहीं जानता। मैं कुछ नहीं जानता। मैंने ऐसा ही समझा है और रिश्ते की पवित्रता को मैं हँसी-मजाक पर निछावर नही कर सकता। जिसे मैंने अपने मन मे माँ के रूप मे देखा, उसे किस भाँति पत्नी-रूप मे देख सकता हूँ ? पिता जी अब विवाह करें तो करे मैं नही कर सकता।

प्र० मन्त्री--उनकी आयु अब विवाह करने की है ?

लक्षसिंह--युवराज !

युवराज--हाँ पिता जी।

लक्षसिह--मैंने हँसी में वह बात कही थी, मेरी यह इच्छा कैसे हो सकती है.......तुम नहीं समझ सकते !

युवराज--मैं कह चुका हूँ पिता जी ! मैं रिश्ते की पवित्रता को हँसी-मजाक पर कदापि निछावर नहीं कर सकता।

लक्षसिंह--(ज़रा क्रोध से) तो तुम यह नारियल स्वीकार न करोगे ?

युवराज--मैं विवश हूँ।

लक्षसिंह--(और क्रोध से) नारियल वापस नहीं जा सकता।

युवराज—(चुप रहता है।)

लक्षसिंह—(क्रोध तथा जोश से) इस से न केवल राव चूडावत का अपमान होगा वरन् दोनों राज्यों मे देर से दबी हुई मनोमालिन्य की आग धधक उठेगी। यही नहीं, राव रणमल क्या समझेंगे? क्या वे अपने आपको अपमानित, तिरस्कृत महसूस न करेंगे और क्या अपने अतिथि का अपमान करने से मेवाड़ का गौरव बढ़ेगा?

युवराज—(चुप रहता है)

लक्षसिंह—(चीख कर) तो तुम नारियल स्वीकार न करोगे?

युवराज—(नम्रता से) नहीं!

लक्षसिंह—(उसी स्वर में) तो मै करूँगा।

युवराज—मुझे इसमे प्रसन्नता होगी।

लक्षसिंह—इसका परिणाम सोच लिया?

युवराज—कर्तव्य के रास्ते में राजपूत परिणाम की चिन्ता नहीं करता!

लक्षसिंह—हो सकता है, तुम्हे सिंहासन से हाथ धोना पड़े।

युवराज—मै सेवा मे ही स्वर्ग समझूँगा।

प्रणाम करके तेजी से प्रस्थान

लक्षसिंह—(ब्राह्मण से) ब्राह्मण देवता! आप दो-चार दिन तक प्रतीक्षा करें, चंड अभी बच्चा है और सोच समझ को बचपन

मे दखल नही होता। दो-चार दिन तक समझ जाएगा।

सेवकों के साथ ब्राह्मण का प्रस्थान

लक्षसिंह--आप लोग उसे समझाएँ अमात्य! और मुझे एकान्त मे छोड़ दें, मेरा मस्तिष्क जैसे खौल रहा है, समझ और सोच की शक्तियाँ जैसे जवाब दे गई हैं। कुछ नहीं सूझ पाता, कुछ नहीं समझ पाता!

प्र० मन्त्री—(जैसे अपने से) क्या सोचा था और क्या हो गया।

प्रस्थान

पृथ्वीनाथ--(जैसे अपने से) आशा का लहलहाता सरोवर मृग-मरीचिका सिद्ध हुआ।

प्रस्थान

धनेश्वर--(जैसे अपने से) क्या यह सुख लाया, शान्ति लाया? विधि की कैसी विडम्बना है! किन्तु, झोटिंग ने कहा था, कीर्तिमान ने कहा था।

प्रस्थान

सब चले जाते हैं, राणा लक्षसिंह बेचैनी से घूमते हैं।

लक्षसिंह--(रुक कर जैसे अपने से) चंड! तुम अपने पिता की इच्छा का इतना सम्मान करते हो, मुझे इस पर गर्व होना चाहिए, पर नही, निरीह बालिका के जीवन का प्रश्न है।

फिर घूमते हैं।

(फिर रुक कर) तो क्या नारियल वापस कर दूँ? नहीं, मेवाड़ और मंडोवर के मध्य लोहे की एक दीवाल खड़ी हो जाएगी,

जो तोड़े न तोड़ी जा सकेगी। और फिर दुनिया क्या कहेगी ? मेवाड़ से नारियल मुड़ गया—न, मै यह सहन न कर सकूँगा। ओह ! चंड, चंड ! तुम ने मुझे किस कठिन परिस्थिति मे डाल दिया ?

फिर घूमते हैं ।

पट-परिवर्तन

२

रानी पद्मिनी के महलों का एक उद्यान

हेमवती सहेलियों के साथ प्रवेश करती है।

हेमवती—यह स्थान मुझे कितना प्रिय है। इसके साथ बचपन की कितनी स्मृतियाँ लिपटी पड़ी हैं। ठंडी-ठंडी हवा मे लम्बे-लम्बे साँस लेना, सुन्दर फूलो पर मँडराते हुए भ्रमरो की गुंजार सुनना! और रंग-विरंगी तितलियो का नृत्य देखना! मै जब भी यहाँ आती हूँ, अपने इस प्रिय स्थान को देखने के लिये आतुर हो उठती हूँ।

एक सखी—तो आओ यहीं आमों की घनी छाया मे डेरे डाल दे।

हेमवती—(मन्दिर की ओर निर्निमेष देखती हुई) और यह, युवराज के अनुरोध पर बनाया गया रानी पद्मिनी का मन्दिर, कितना भव्य, कितना सुन्दर, कितना लालित्यपूर्ण है। मैं उन दिनों की कल्पना करती हूँ, जब विध्वंसकारियो के हाथ इन खंडहरो को छू न पाए थे और रानी पद्मिनी इस मन्दिर की पूजा को आती थी। (मुड़ कर सखी से) देखती हो सखि, वसन्त सूर्य ने अपनी सुनहरी किरणों से इस दृश्य पर कैसा जादू फूँक दिया है। सामने ऊँचे, लम्बे, हरियाले पहाड़, सिर पर विशाल नीला अम्बर और नीचे नीलम-निर्मल जल-राशि, फिर इन सब को स्वर्ण

दान देती हुई वसन्त के सूर्य की मीठी-मीठी स्नेहमयी धूप! युवराज ने इन खंडहरो के जीर्णोद्धार का निश्चय करके सच ही एक बहुत अच्छा काम किया है।

दूसरी सखी—तुम किधर एक-टक, निर्निमेष देख रही हो राजकुमारी! आओ कुछ सुस्ता ले, थक गई है, कुछ आराम करलें।

हेमवती—नही मुझे बहुत दिन यहाँ नही रहना। जाने से पहले मैं इन सब को भली-भाँति देख जाना चाहती हूँ, जिनकी स्मृति मुझे प्राय बेचैन कर दिया करती है, चित्तौड़ खीच लाती है, उन्हे देखे बिना मै आराम न कर सकूँगी। चलो, वह महल भी देख आएँ।

तीसरी सखी—राजकुमारी, चलो अब फिर आएँगे।

हेमवती—अब यहाँ पहुँच कर वापस जाना मै नही चाहती। मैं तो सब देख कर ही चलूँगी।

चौथी सखी—इन टूटे-फूटे खंडहरो मे क्या रखा है, जो तुम इन्हे देखने के लिये इतनी लालायित हो?

हेमवती—(उसकी ओर मुड़ कर) क्या कहती हो, इनमे क्या रखा है? अब यह भी मुझे तुम लोगो को बताना होगा। इन भग्न-खंडहरो मे वीरता और शौर्य का वह इतिहास छिपा पड़ा है जो आज भी राजपूताने के रक्त को गर्म रखता है। यह खंडहर न हो, तो महारावल रत्नसिह और रानी पद्मिनी के

बलिदान की अद्वितीय कहानी केवल एक अफसाना बन कर रह जाय।

पहली सखी—चलो राजकुमारी, इनके महत्त्व को ये मूर्ख क्या समझेंगी।

हेमवती—मै तुम्हे क्या बताऊँ इनका महत्त्व कितना है, यह हमे क्या बताते हैं ? सुनने वाले कान हो तो इन खंडहरो के टूटे-फूटे पत्थर, इन महलो की जली-फुँकी भित्तियाँ हमे बताएँगी, कि हमारा कर्तव्य क्या है, बताएँगी, कि धर्म और मर्यादा के आगे धन और ऐश्वर्य का कोई महत्त्व नहीं, बताएँगी की मर्यादा की रक्षा के लिये मेवाड़ वीर राना ने किस तरह अपने हाथो, अपने जिगर के टुकड़ो को, अपने ग्यारह वीर पुत्रो को, मृत्यु की प्रबल वह्नि में झोक दिया, किस भाँति स्त्रीत्व की रक्षा के लिये मेवाड़ की रानी ने सहस्रो दूसरी वीरांगनाओ के साथ जौहर की ज्वाला का आलिङ्गन किया ?

सब चलती है।

हेमवती—(मुड़ कर) सुकेशी कहाँ है ? शायद वह धाय के साथ उधर चली गई है।

एक सखी—(आवाज देती हुई) सुकेशी, सुकेशी !

हेमवती—लो वह आ ही रही है। आओ चलें, हमारे पीछे आ जाएगी।

सब चली जाती हैं।

सुकेशी धाय का हाथ पकड़े दाख़िल होती है।

सुकेशी—वे इधर गई हैं, इधर गई है माँ ! आओ हम उधर चले।

धाय का हाथ पकड़ कर खींचती हुई ले जाती है।

पट-परिवर्तन

३

रणमल का निवास-स्थान

रणमल और वाघसिंह

रणमल—क्या कहा वाघसिंह ! क्यों खुशी हुई ? इस से बढ़ कर खुशी की बात और क्या हो सकती है। ओह ! आज मैं बहुत प्रसन्न हूँ, उल्लास से भरा जा रहा हूँ।

मदिरा पान करता है।

वाघसिंह—प्रसन्न ! मैं कहता हूँ आप को दुखी होना चाहिये। आप का आश्रय छिना जा रहा है और आप खुशियाँ मना रहे हैं।

रणमल—(मूछों पर ताव देता हुआ) आश्रय कैसा वाघसिंह ! मैं स्वयं अपना अवलम्ब हूँ। मैं किसी पर आश्रित नहीं। सिपाही हूँ और सिपाही बन कर यहाँ आया हूँ। फिर सैनिक को सैनिक बन कर रहने मे दुख कैसा ? किन्तु यह देखना—किसी दिन मेवाड़ और मंडोवर का ताज इसी सिपाही के मस्तक को शोभित कर रहा होगा।

वाघसिंह—कुमार, आप बहुत पी गए हैं। शायद होश मे नहीं हैं।

सुराही इत्यादि उठा कर खिड़की में बन्द कर देता है।

रणमल—होश मे नहीं हूँ ! शायद मै आज जितना होश में

कभी नहीं हुआ। मै कहता हूॅ, अगर युवराज अपनी जिद पर अड़े रहे और हंसाबाई का विवाह लक्षसिंह से हुआ, तो मुझ से बढ़ कर भाग्यवान दूसरा कोई न होगा। मै हंसाबाई के दोष जानता हूँ। वह बहुत भोली है। मुझे सौतेला भाई नही समझती। माॅ के ईर्षा-द्वेष से उसे कोई काम नही। ऐसे भोले लोगो को राजनीति की बिसात पर गोटे बनाना सुलभ है। बाघसिंह, तुम नही समझते। मै बहुत दूर की सोच रहा हूॅ।

बाघसिंह—मै कुछ नही समझा, आप बहुत पी गए हैं।

रणमल—ओह! यह विवाह हो जाए। फिर मै देखूँगा—किस तरह छोटी रानी मेरा अधिकार छीन कर, उस नन्हे से बच्चे को मंडोवर का अधिपति बनाए रखती है।

बाघसिंह—और मै कहता हूॅ—अब आपको किसी दूसरे घर की राह देखनी चाहिये। आख़िर हंसाबाई लड़की तो उसी माॅ की है, जिस ने आप को देश से निकल जाने पर विवश किया था। अगर युवराज से हंसाबाई का विवाह होता तो खैर! उस के रानी होने की सम्भावना इतनी सन्निकट न होती, किन्तु अब तो विवाह होते ही वह मेवाड़ की महारानी होगी और आप क्या होगे? उसी गुहिल-वंशीय रानी की लड़की के दास! जब चाहेगी, आप को यहाँ से खदेड देगी।

रणमल—दास! हा, हा, हा! (कहकहा लगाता है।) दास!! तुम वाघसिंह बिलकुल भोले हो। लड़ना-मात्र जानते हो, बस! तुम मनुष्य के स्वभाव की गहराइयों को क्या समझो, तुम हंसाबाई के स्वभाव को क्या समझो, राजनीति मे मीठी जबान का जो दख़ल है, उसे तुम क्या समझो? पटुता और चालाकी से राजनीति मे जो काम निकाले जा सकते हैं, तुम क्या जानो, सहानुभूति और मित्रता का दाना बिछा कर किस तरह पत्नी को फाँसा जाता है, तुम क्या जानो। लाओ सुराही दो। यदि आज के दिन न पी, तो और कब पीऊँगा।

वाघसिंह—मैं राजनीति नहीं जानता, इन सब चालो को नहीं जानता, पर एक बात अच्छी तरह जानता हूँ—यह नशे की लत अच्छी नहीं कुमार! किसी न किसी दिन यह आपको ले डूबेगी।

रणमल—नशे की लत! वाघसिंह इस संसार में कौन नशे से रहित है? किसी को धन का नशा है, किसी को जन का नशा है, किसी को प्यार का नशा है, किसी को अधिकार का नशा है। सब मस्त हैं—अपने अपने रंग मे, अपनी अपनी खाल में। नशा न हो यो संसार नीरस हो जाए। इस में स्पन्दन न रहे, इस मे प्राण न रहे।

वाघसिंह—(हँस कर) शायद नशे मे आदमी दार्शनिक भी हो जाता है।

रणमल—(कहकहा लगा कर) दार्शनिक ! क्या खूब कहा तुम ने, आज मै खुश हूँ और आज दार्शनिक बनने मे भी आनन्द आता है ।

उठ कर खिड़की खोलने लगता है ।

सेवक प्रवेश करता है ।

सेवक—कुमार ! युवराज पधारे हैं ।

रणमल—जाओ, सम्मान सहित ले आओ । (बाघासिंह से) अब देखना मै नशे मे हूँ ? आज की बात पर ही जीत और हार निर्भर है और मै जानता हूँ मुझे क्या करना है ।

युवराज का प्रवेश

दोनों खड़े होकर अभिवादन करते है ।

रणमल की आकृति गम्भीर हो जाती है ।

रणमल—कहिए युवराज ! आज किस प्रकार इस गरीब पर कृपा की ।

युवराज—मैने आप से एक बात के सम्बन्ध में परामर्श करना है ।

रणमल—दास प्रस्तुत है ।

युवराज—आज सुबह दरबार मे जो कुछ हुआ आप वह जानते हैं ?

रणमल—हाँ, मैं देर से पहुँचा था, मन्त्री की जबानी सब कुछ मालूम हुआ । आप की पितृ-भक्ति की मिसाल संसार भर मे न मिलेगी ।

युवराज—(खुशामद से अप्रभावित) क्या ऐसा हो सकता है, आपको दुख तो न होगा ?

रणमल—क्या ?

युवराज—पिता जी से मंडोवर-कुमारी का विवाह ! सच जानिए, मुझे आपका अपमान अभीष्ट न था । मेरी विवशता आप समझ गए होगे ।

रणमल—हाँ, मै समझता हूँ । आप विवश थे, किन्तु आप ने बड़ा कठोर प्रण कर लिया । आप सिहासन के अधिकार तक से हाथ धोने को तैयार हो गए ।

युवराज—अपनी प्रतिज्ञा के आगे मैं सिंहासन को कोई महत्त्व नहीं देता ।

रणमल—चाहे आप की इस अद्वितीय पितृ-भक्ति का सब से कठिन प्रहार मुझ पर ही होगा, किन्तु फिर भी मैं कहूँगा आप महान हैं, हम आप की चरण-रज की बराबरी भी नहीं कर सकते ।

युवराज—आप बताइए यह हो सकेगा ? इस नाते मे आप को तो कोई आपत्ति न होगी ?

रणमल—हंसाबाई अभी बालिका है ।

युवराज—वह मेवाड की महारानी बनेगी । हम सब उसके अनुचर होगे ।

रणमल—किन्तु भविष्य ! आजन्म दासता ...

युवराज—उन का पुत्र मेवाड का महाराणा होगा। वे राजमाता बनेंगी।

रणमल—तो आप सिंहासन का अधिकार छोडने का फैसला कर चुके हैं?

युवराज—आप कहिए, ऐसा हो सकेगा? मै सिहासन की परवाह नहीं करता।

रणमल—पिता जी को कैसे विश्वास होगा?

युवराज—विश्वास कैसा?

रणमल—शायद वह आश्वासन चाहे।

युवराज—आश्वासन?

रणमल—यही कि यदि हंसाबाई के पुत्र हुआ तो वही राज्य का अधिकारी होगा।

युवराज—मै भगवान एकलिंग के सामने शपथ ले लूँगा।

रणमल—आप महान हैं, किन्तु सोच लीजिए--आप कितना बडा प्रण कर रहे हैं?

युवराज—कहिए! यदि इसके बाद आपको आपत्ति न हो? मैं अपने कर्तव्य के आगे इस से बडा प्रण कर सकता हूँ।

रणमल—हाँ! यदि इतना हो सके........आप पिता जी को लिख दीजिए।

युवराज—उन्हे मै आज ही लिखूँगा। आपको तो कोई आपत्ति नहीं?

रणमल—यदि मेरी बहिन मेवाड़ की रानी बने, मेवाड़ की

राजमाता बने, तो मुझे क्या आपत्ति होगी। किन्तु युवराज! आप फिर सोच लें।

युवराज—मैं सोच चुका।

चलने को प्रस्तुत होते हैं। रणमल और बाघसिंह उन्हें दरवाज़े तक छोड़ने जाते हैं। युवराज के चले जाने पर बाघसिंह कपाल ठोंकता है।

बाघसिंह—आपको क्या हो गया है। नशे में ·······

रणमल—क्या बक रहे हो?

बाघसिंह—स्वयं विपत्ति को निमन्त्रण दे रहे हैं आप।

रणमल—चुप रहो, मुझे सोचने दो।

कमरे में घूमता है।

—कलम दवात लाओ!

बाघसिंह कलम दवात लेने जाता है।

रणमल—(अपने आप) अधिकार के मैदान में एक बार बाज़ी लगाऊँगा। जीत गया, तो सब कुछ अपना है, नहीं तो जहाँ वह गया, वहाँ यह भी सही।

फिर घूमता है। बाघसिंह कलम दवात ले आता है। रणमल जल्दी-जल्दी एक चिट्ठी लिख कर बाघसिंह को देता है।

जितनी जल्दी हो सके यह चिट्ठी पिता जी को पहुँचाओ। तेज़ घोड़ा ले लेना। युवराज जो चिट्ठी भेजे, उस से

पहले यह पहुँच जाय!

वाघसिंह खड़ा रहता है।

रणमल--यों खड़े क्या देखते हो? मै होश मे हूँ। एक दो घूँट क्या, सुराही भी हलक मे उँड़ेल लूँ, तो भी होश नही खो सकता --और फिर ऐसे जीवन-मरण के मामले मे! जाओ! आने पर तुम्हे सब कुछ बता दूँगा। अभी इतना जान लो कि यदि तुमने यह चिट्ठी समय पर पहुँचा दी तो मै एक दिन मेवाड़ और मंडोवर दोनो का स्वामी हो सकता हूँ।

वाघसिंह जाना चाहता है।

रणमल--सुनो! (पास जाकर, धीरे-धीरे समझाते हुए) माता जी से कहना--वह भट्टी-सरदार जोधाजित से कहे कि वे आगामी वर्षो मे पाँच पाँच, छः छः कर के सैनिक यहाँ भेजते रहे, जो यहाँ की सेना मे प्रवेश करने का प्रयास करे।

वाघसिंह जाना चाहता है।

रणमल--और सुनो, (धीमे स्वर में) देखो, सब बात गुप्त रखना! पिता जी के अतिरिक्त किसी को यह चिट्ठी न देना और माता जी के सिवा किसी से यह बात न कहना। जाओ, मै तुम्हारे आने की प्रतीक्षा करूँगा।

वाघसिंह चला जाता है। रणमल पुनः सुराही निकालता है और प्याले में मदिरा डालता है।

(अपने आप) बाजी लग गई है छोटी माँ! देखूँ, तुम्हारी जीत होती है या मेरी। जीत गया तो अपने अपमान का बदला

व्याज समेत चुका दूँगा और जिसको तुमने मूर्ख, अकर्मण्य और अपदार्थ कहा था, वह कितना नीतिज्ञ है, कितना साहसी है, अधिकार की वाजी मे कितना दौड लगा सकता है, यह सब दिखा दूँगा। और यदि हार गया.. ....

पीता है।

लेकिन नहीं, जीतूँगा, अवश्य जीतूँगा।

फिर पीता है।

पट-परिवर्तन

४

मेवाड़ का राज-भवन

राणा लक्षसिंह और रानी

लक्षसिंह—तुम समझाओ उसे रानी! मैं तो हार गया हूँ। तुम उसकी माँ हो, तुम्हारे उपदेशो ने उसे हठी, सत्यव्रती, सच्चा राजपूत बना दिया है। सोचो—मै अब विवाह करने जाऊँगा? क्या मै विवाह के योग्य हूँ?

रानी--क्यों महाराज, विवाह के योग्य क्यों नही, अभी तो.........

लक्षसिंह—रानी, हँसी न करो, तुम नहीं जानतीं इस समय मेरे मस्तिष्क मे कौन सा तूफ़ान उठ रहा है। मै--सात बच्चो का बाप—बुद्धिमान, कर्तव्य-परायण, वीर पुत्रो का पिता--अब इस आयु मे विवाह करने जाऊँगा। अब तो रानी! मुझे युद्ध मे जाना चाहिये। घर मे कायरो की मौत मरने की अपेक्षा यवनो के विरुद्ध युद्ध मे वीर-गति प्राप्त करने की चेष्टा करनी चाहिये। और मुझे कहा जा रहा है—मै विवाह करूँ! तुम उसे समझाओ।

रानी—मै उसे क्या समझाऊँ महाराज, क्या वह दूध पीता बच्चा है, क्या वह अपने कर्तव्य को नही समझता।

लक्षसिंह—कर्तव्य! रानी! तुम ने कभी इस कर्तव्य का

परिणाम सोचा है। कभी सोचा है, वह कितना भयानक हो सकता है। यह सब झूठी मर्यादा है, झूठा कर्तव्य है।

रानी—महाराज! राजपूतों ने अपनी बात की टेक रखी है। आप उसे झूठी मर्यादा कहते हैं। इस दृष्टि-कोण से तो पिता के प्रण को पालने के लिये भगवान राम का वन चले जाना, वृद्ध पिता को दुख और क्षोभ मे छोड़ कर भी वन को जाना, मूर्खता थी, झूठी मर्यादा की रक्षा थी। पितामह भीष्म का अपने पिता की इच्छा के लिये आयु-पर्यन्त ब्रह्मचारी रह कर अपने प्रण पर चट्टान की तरह खड़े रहना भी विवेकहीनता थी, दम्भ था। महाराज! क्या बात पर मिट जाने वाले पितृभक्त भगवान राम और भीष्म मूर्ख थे?

लक्षसिंह—तो क्या मैंने हँसी मे यह बात नही की, क्या मै विवाह करना चाहता हूँ।

रानी—राजा दशरथ भी न चाहते थे कि राम वन को जाएँ, राजा शान्तनु की भी इच्छा न थी, कि उनका प्रिय देवव्रत इतना भीष्म-व्रत धारण करे। यह तो उन पितृभक्तो की कर्तव्य-परायणता थी कि उन्होने अपना कर्तव्य समझते हुए ऐसे व्रत लिए और विपत्तियो का सामना करते हुए भी उन्हे पालन किया। मेरा चंड भी वैसा ही दृढ़-प्रतिज्ञ, वैसा ही सत्य-व्रती है--महाराज! आप उसके कर्तव्य-पालन को

अपनी बात से छोटा न कीजिए। क्या मैने एक दिन न कहा था, कि मेरे पुत्र भी कम पितृभक्त नही और अवसर पड़ने पर अपने पिता की साधारण सी इच्छा के लिये अपना सर्वस्व तक बलिदान कर सकते है।

लक्षसिंह—और यदि नारियल अस्वीकार कर दूँ ?

रानी—शौक से कर दे, क्या आपको लाज न आएगी ? क्या मेवाड़ के राज-गृह मे आया हुआ नारियल किसी दूसरे के यहाँ जायगा ? क्या मेवाड़ के राणा एक स्त्री को अपनी कह कर, भरे दरबार मे कह कर—मै विवाह करूँगा—उसे त्याग देगे ? उनके गौरव को धक्का न लगेगा, उनके अभिमान को आँच न आएगी ?

लक्षसिंह—जानती हो, इसका परिणाम क्या होगा ? गृह-युद्ध, ईर्षा, द्वेष !

रानी—मेरे पुत्र पर आप यह अभियोग नहीं लगा सकते। वह यदि प्रतिज्ञा करना जानता है तो उसे प्राणपण से निभाना भी जानता है।

लक्षसिंह—तो तुम चाहती हो, मै विवाह करूँ ?

रानी—हाँ ! अपने पुत्र की बात रखने के लिये, उसकी प्रतिज्ञा की रक्षा के लिये, आपको यह कड़वा घूँट पीना ही चाहिये।

लक्षसिंह—रानी, तुम ऐसे बाते कर रही हो, जैसे इस बात

का तुम से कुछ सम्बन्ध नही। मैं इस वृद्धावस्था मे तुम्हारे सीने पर सौत ला बिठाऊँगा, इससे तुम्हे दुख नही होता? वड़ी निष्ठुर हो तुम!

चले जाते हैं।

—(अपने आप) क्या कहा नाथ, मुझे दुख नही होता, मै निष्ठुर हूँ! हाय नाथ! कहीं तुम इस हृदय मे पैठ सकते, पैठ सकते तो देखते, इसमे कितनी वेदना है, कितनी व्यथा है? लेकिन (दीर्घ निश्वास छोड़ती है।) क्या करूँ? राजपूतनी हूँ, जिस वात की शिक्षा स्वयं देती रही हूँ, स्वयं उसके मार्ग का रोडा कैसे वन जाऊँ?

नेपथ्य की ओर देखती है।

रानी—चंड आ रहा है। आओ चंड! अपनी माता को धीर वँधाओ, उसे वल दो, शक्ति दो कि वह इस विपत्ति को हँसते-हँसते जूझ सके।

युवराज चंड का प्रवेश, प्रणाम करता है।

रानी—चिरंजीव हो वेटा! यह तुमने क्या कर दिया?

युवराज—क्या माता?

रानी—सारे राज्य मे तुम्हारे इस व्रत के कारण हलचल मची हुई है। हर जगह इसी वात की चर्चा हो रही है। वेटा, क्या मेरी चिरसंचित आशाओ पर यो पल भर में पानी फेर

दोगे ? क्या मेरे सीने पर सौत को बैठे देख कर, मेरा अपमान, मेरी अवहेलना होते देख कर तुम्हे प्रसन्नता होगी ?

युवराज—माँ !

रानी—बेटा !

युवराज—यदि तुम ऐसी बाते करोगी तो मै अपने व्रत पर दृढ़ न रह सकूँगा। मुझे तो विश्वास है, कि जिस माँ ने मुझे पितृभक्ति का पाठ पढ़ाया है, वह पति-भक्ति को अच्छी तरह जानती है। माँ ! व्रत चाहे मैने ही लिया है, किन्तु उसमे शक्ति तो तुम्हारी ही काम करती है।

रानी—किन्तु मेरा दुख बेटा......

युवराज—मै मानता हूँ तुम्हें दारुण-दुख सहना पड़ेगा, पर माँ! राजपूत-रमणियां तो दुखो मे पल कर बड़ी होती हैं। अपनी और अपने वंश की मर्यादा रखने के लिये वे जान की कोई परवाह नहीं करतीं। तो क्या तुम अपने पुत्र को कर्तव्य-पथ से हटता देख सकोगी ? क्या तुम्हे यह देख कर प्रसन्नता होगी ? माँ मुझे साहस दो, बल दो, शक्ति दो कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर पूरा उतरूँ। कठिन से कठिन परिस्थिति मुझे अपने शिखर से न डिगा सके, बड़े से बड़ा प्रलोभन मुझे अपने पथ से न विचलित कर सके!

रानी—जाओ बेटा! तुम्हारा कर्तव्य जो सिखाता है, तुम्हारी आत्मा जिस बात की साक्षी देती है, वही करो और

प्रार्थना करो कि मुझ में सब कुछ सहने की शक्ति आ जाए। भगवान करे तुम अपने व्रत पर दृढ़ रहो और जब जब भविष्य मे चित्तौड़-वासी इन पहाड़ो, इन चट्टानो को देखे, तो उनके हृदय-पट पर तुम्हारा चित्र खिंच जाए। उन्हे अपने उस युवराज की याद आ जाए जो अपने कर्तव्य पर इन्ही की भाँति स्थिर, अविचल, अटल खड़ा रहा था।

आशीर्वाद देती है।

पट-परिवर्तन

५

मंडोवर का राज-भवन

छोटी रानी अपने कमरे में आराम कर रही है, दो दासियाँ सितार बजा रही है। राव चूड़ावत चिन्तामग्न प्रवेश करते है। हाथ में एक पत्र है। सब उठ खड़ी होती हैं, अभिवादन करती है। दासियाँ चली जाती हैं।

रानी--स्वच्छाकाश पर यह बादल कैसे छा रहे हैं महाराज? यह उतरा उतरा चेहरा, ये फटी फटी आँखे, किस अनिष्ट की सूचना देती है।

राव—रणमल की ओर से यह चिट्ठी आई है, पढ़ कर मै उद्विग्न हो उठा हूँ। क्या सोचा था रानी! (दीर्घ निश्वास छोड़ते है।) मै बहुत बेचैन हूँ, तुम नही समझ सकती!

रानी--कहो नाथ! कहो, मै तैयार हूँ, तुम कहो! मैं दुख का भार बटा लूँगी। कहो मेरे राव, बड़ी रानी से कुछ झगड़ा तो नही हो गया, रणमल ने कुछ कटु बाते तो नही लिखीं; बड़ी रानी की ईर्षा फिर तो नही धधक उठी, मन को कुछ क्लेश तो नही पहुँचा? कहो! क्या लिखा है इस पत्र मे? (उदास भाव से) वास्तव मे मैंने तुम दोनो के मध्य आकर बुरा किया। और फिर आ ही गई थी तो मुझे अपने हृदय को वस मे रखना चाहिये था। लेकिन मै क्या करती, तुम ही कहो मै क्या करती?

राव—नहीं प्रिये! मैं तो तुम्हारा आभारी हूँ। तुम ने मेरे जीवन

की बुझती हुई बत्ती को अपने स्नेह से फिर जिला दिया, इस शुष्क वृक्ष को अपने स्नेह-रूपी जल से फिर हरा कर दिया। बड़ी रानी तो क्या, मै समस्त संसार को तुम्हारे लिये तिलाञ्जलि दे सकता हूँ। बात रानी के सिलसिले मे नहीं, हंसा के सम्बन्ध मे है।

रानी—हंसा के सम्बन्ध में ?

राव—देखो चित्तौड़ से रणमल ने यह पत्र भेजा है।

पढ़ते हैं।

पूज्य पिता जी,

यद्यपि मैं निर्वासित हूँ। आपके स्नेह का पात्र नही हूँ। फिर भी आप का पुत्र हूँ। हंसा का भाई हूँ। इसी लिये कुछ पंक्तियाँ लिख कर आप को इस बात से सूचित कर रहा हूँ।

आप ने जो नारियल युवराज चंड के लिये भेजा था। उस के सम्बन्ध मे यहाँ एक विचित्र परिस्थिति उठ खड़ी हुई है। जब नारियल दरबार मे आया तो कही राणा लक्षसिंह के मुँह से यह निकल गया—यह नारियल तो युवराज के लिये आया होगा, हम बूढ़ो के लिये कौन नारियल लाता है—बस, इस पर युवराज ने नारियल लेने से इनकार कर दिया और भरे दरबार मे हंसा के लिये 'माँ' शब्द का प्रयोग कर दिया। क्रोध मे आकर राणा ने स्वयं नारियल स्वीकार करने की प्रतिज्ञा कर ली। वह वृद्ध हैं। मैं नही चाहता मेरी बहन एक वृद्ध के गले

मढ दी जाए। परन्तु यदि ऐसा हो भी तो ऐसी शर्त अवश्य लगा दी जाए जिससे हंसाबाई का पुत्र ही राज्य का अधिकारी बने। वृद्ध तो घाट के किनारे का वृक्ष होता है, कौन जाने कब गिर जाए। मेरा विचार है आप मेरी बात समझ गए होंगे।

आप का निर्वासित पुत्र

रणमल

रानी—इससे बढ़ कर अच्छी बात और क्या हो सकती है?

राव—क्या कहा रानी? अच्छी बात! इससे बढ़ कर दुर्भाग्य की बात और कोई नहीं हो सकती!

रानी—कि हंसाबाई मेवाड़ की रानी बने, शक्तिशाली सम्पन्न मेवाड़ की रानी बने, यह दुर्भाग्य है महाराज! आप क्या कहते हैं?

राव—मैं ठीक कहता हूँ। हंसा मेवाड़ की रानी तो होगी, पर एक वृद्ध के साथ उसके दाम्पत्य-जीवन की कल्पना भी करती हो? नीरस और शुष्क! मै जान-बूझकर अपनी प्रिय पुत्री को दुख के अथाह सागर मे कैसे धकेल दूँ? रणमल भी तो......

रानी—दाम्पत्य-जीवन महाराज! क्या हमारा दाम्पत्य-जीवन दुख-मय रहा है? फिर मेरे विवाह के समय आप की आयु कितनी थी? क्षत्राणियाँ पति की सेवा करना खूब जानती हैं। वे चाहे तो नरक ऐसे दाम्पत्य-जीवन को स्वर्ग बना दें। तो क्या मेरी

लड़की क्षत्राणी नहीं, उसने क्षत्राणी का दूध नहीं पिया ? रही रणमल की बात, वह तो ईर्षा से जल उठा होगा। उसकी सौतेली बहिन मेवाड़ की सम्राज्ञी हो और वह उसका तुच्छ सेवक ! महाराव मेरी लड़की जिससे मेवाड़ की सम्राज्ञी बने, ऐसा ही कीजिए।

राव—यदि उसके पुत्र को सिंहासन का अधिकार न हुआ तो हंसाबाई जैसे सम्राज्ञी हुई, न हुई।

दासी का प्रवेश

दासी—राज-मन्त्री ने यह चिट्ठी भेजी है और कहा है कि दूत इसे अभी चित्तौड से लाया है।

राव चूड़ावत चिट्ठी लेकर पढ़ते हैं

राव—लो युवराज की चिट्ठी भी आई।

रानी—क्या लिखा है ?

राव—अपने पिता के लिये हंसाबाई के हाथ की याचना की है।

रानी—महाराव आप शर्त लगा दें कि यदि युवराज अपने सिंहासन का अधिकार छोडने को तैयार हों तो यह विवाह हो सकता है।

राव—यह तो लिखा जा सकता है, किन्तु आश्वासन क्या है रानी ? क्या भरोसा, वह विवाह के पश्चात् फिर अपना अधिकार जमा ले।

रानी—महाराव! युवराज चंड सारे राजपूताने मे अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा और ऊँचे चरित्र के लिये प्रसिद्ध हैं। आप उन्हे कहे कि भगवान एकलिंग के सामने शपथ लेकर वह प्रण करें कि राज्य का अधिकार हंसाबाई के पुत्र के लिये छोड़ दिया जाएगा।

राव—मै लिख दूँगा, किन्तु रानी भली-भाँति सोच लो।

रानी—मैने सोच लिया महाराव! मैं अधिकार की पुजारिन हूँ। मेरी हंसा समस्त मेवाड़ की रानी होगी। इस बात की कल्पना ही से मुझ पर प्रसन्नता का उन्माद छाया जाता है। महाराव! मै युवराज से भी इसी लिये नाता करना चाहती थी। अब यदि वह तैयार नही तो महाराणा लक्षसिंह ही सही। मै हंसा को किसी साधारण जागीरदार की पत्नी बनते नहीं देखना चाहती। मैं उसे समस्त मेवाड़ पर शासन करते देखना चाहती हूँ। आप शर्त लिख भेजिए।

राव—(चलते हुए) कौन कहता है मैं राज्य करता हूँ। राज्य तो तुम करती हो मैं तो तुम्हारे हाथो मे खिलौना मात्र हूँ।

प्रस्थान

रानी—मेरी लड़की मेवाड़ की रानी होगी और तुम्हारा लड़का, बड़ी रानी! उसका दास।

प्रसन्नता से जैसे उछलती हुई जाती है।

पट-परिवर्तन

६

मंडोवर का उपवन

हंसावाई अपनी सखियों के साथ

सब खेलती और गाती हैं।

आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

ऊषा कुंकुम रोली लाई
नभ पथ में फैलाती आई
कण-कण में है मस्ती छाई
फूली है मन की फुलवारी
आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

कुंज-कुंज में कोयल बोली
मन में मानो मिसरी घोली
तुम क्यों चुप बैठी हो भोली?
तुम पर तो सुन्दरता वारी
आज खुशी की घड़ियाँ प्यारी

एक वृक्ष के नीचे बैठती हैं।

एक सखी—राजकुमारी, आज तो तुम अत्यन्त प्रसन्न दिखाई दिखा देती हो। तुम्हारा मुख खिला-खिला पड़ता है और अंग-अंग से जैसे उल्लास फूट रहा है।

हंसावाई—सच ही आज मैं प्रसन्न हूँ, और मेरे

साथ यह उद्यान, यह फूल, यह तितलियाँ सब प्रसन्न हैं। बाल-अरुण अपनी स्वर्ण-स्मित से इस विश्व के कण-कण मे मुसकानो का संचार कर रहा है। सखियो! एक बार फिर कोई उल्लास का गीत गाओ।

सखियाँ—हम थक गई हैं, आओ अब चले आराम करे।

हसाबाई—इतनी जल्दी थक गई तुम, तुम सब, तुम्हे क्या हो गया है, तुम्हारी सब स्फूर्ति कहाँ गई?

एक सखी--हमारी स्फूर्ति तो कहीं नही गई, हाँ हम मे नयी स्फूर्ति नहीं आई।

हंसाबाई—मुझ मे कहाँ से नयी स्फूर्ति आ गई?

दूसरी सखी--तुम मे स्फूर्ति न आएगी तो और किस मे आएगी.......

तीसरी सखी—तुम की भावी समाज्ञी होगी और राजपूताने के वीर-शिरोमणि युवराज चंड की पत्नी, तुम क्यो न खुश होगी?

हसाबाई—सच ही आज मैं बहुत खुश हूँ, समस्त राजपूताने में जिस महान आत्मा की पूजा होती है, उसी के चरणो की दासी बनने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा। तुम कुछ गाओ सखियो, कुछ गाओ!

सखियाँ—आओ अब घर चलें!

हसाबाई—(तनिक उदास होकर) सखियो, कुछ गाओ, फिर मै तुम्हे तंग करने न आऊँगी, फिर तुम आराम ही करोगी, तुम्हे सताने वाली हंसा तुम्हारे पास न होगी, तुम्हे तंग न करेगी।

पहली सखी—राजकुमारी, तुम हमे भूल जाओगी।

दूसरी सखी—तुम्हे हमारी याद भी न आएगी।

तीसरी सखी—और हम तुम्हे, तुम्हारे सुन्दर चाँद से मुखड़े को तुम्हारी मुसकान को, तुम्हारी मीठी बातो को स्मरण करके रोया करेगी।

हसाबाई—मै तुम्हे भूल जाऊँगी! (निश्वास छोड़ कर) ये सुख के दिन—स्वच्छन्द, स्वतन्त्र, बन्धनरहित, दायित्व की कैद से आजाद दिन—भुलाए जा सकते हैं कहीं? यह नीलाकाश, यह वाटिका और सब खेल जो इस विशाल आकाश के नीचे इस सुन्दर वाटिका मे हम ने खेले हैं भुलाए जा सक्ते हैं कहीं? इनकी याद सदैव मेरे हृदय मे टीस पैदा किया करेगी।

सखियाँ—तुम उदास हो गई राजकुमारी, यह विछोह, यह वियोग! हम हँसती हैं किन्तु हमारे दिल से पूछो! लो आओ कुछ और देर खेले।

हंसाबाई—नहीं तुम खेलो, तुम गाओ, मैं वहाँ वृक्ष के नीचे बैठी सुनती हूँ।

सब गाती हैं।

गाना

आओ जी, कोई गाना गाओ
आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
चार दिवस जी भर कर खेलो
जीवन से जीवन कुछ लेलो
फिर तो है उड़ जाना जी
कोई गाना गाओ
आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
यह हँसना गाना फिर दुर्लभ
रोना और रुलाना दुर्लभ
होगा और ज़माना जी
कोई गाना गाओ
आओ जी, कोई सुनो सुनाओ
इस घर में है राज हमारा
इस घर में सुख साज हमारा
उस घर कौन ठिकाना जी
कोई गाना गाओ
आओ जी, कोई सुनो सुनाओ

सब कहकहा लगा कर हँसती हैं।

एस—क्यों कैसा गाना गाया, राजकुमारी ? है न समय का!

फिर कहकहे लगते हैं।

घबराई हुई मालती प्रवेश करती है।

साँस फूल रहा है, सब आश्चर्य से

उसकी ओर ताकती हैं।

पहली सखी—मालती, क्या है, घबराई हुई क्यों हो?

मालती—(जैसे अपने आप) उम्मीदों पर पानी फिर गया, आशा-लता हरी भी न हुई थी कि मुरझा गई!

दीर्घ निश्वास छोड़ती है।

पहली सखी—(पास आकर, उसे कन्धे से झँझोड़ कर) मालती, मालती!

मालती—युवराज चंड से राजकुमारी का विवाह न होगा?

सब—युवराज चंड से न होगा?

हंसाबाई अवाक्, मुख की आकृति फीकी।

पहली सखी—तो और किस से होगा?

मालती—लाखा राणा से।

सब—लाखा राणा से, बूढ़े लाखा राणा से?

सब स्तब्ध मालती की ओर देखती हैं। हंसाबाई बैठे बैठे

शिथिल सी, अचेत सी होकर लेट जाती है।

सब उस की ओर भागती हैं।

पहली सखी—(चीख कर) मालती! केवड़ा लाओ, केवड़ा लाओ!

तेजी से मालती का प्रस्थान

पट-परिवर्तन

७

पहाड़ी कन्दरा में शिव-मन्दिर के बाहर

झोटिंग भट्ट और धनेश्वर राय

झोटिंग—क्या कहा ? युवराज ने शपथ लेली, सिंहासन का अधिकार छोड़ने की शपथ लेली !

धनेश्वर—हाँ, उन्होने समस्त दरबारियो के सामने भगवान एकलिंग के मन्दिर मे जाकर शपथ लेली ।

झोटिंग—उन्हे किसी ने रोका नही ?

धनेश्वर—सब ने रोका किन्तु अपने प्रण पर वह अटल खड़े रहे ।

झोटिंग—महाराणा ?

धनेश्वर—उन्हे युवराज की इस हठ पर क्रोध है, वे विवाह करेगे दूत मंडोवर जा चुका है ।

झोटिंग—महारानी ?

धनेश्वर—वे व्यथित हैं !

झोटिंग—नागरिक ?

धनेश्वर—सब अप्रसन्न हैं, अनिष्ट की आशंका से सब भयभीत हैं ।

झोटिंग—(जैसे अपने से) चिनगारी पड़ गई, चिनगारी पड गई, मेवाड़ की शान्ति नष्ट हो कर रहेगी ।

धनेश्वर—अच्छे लक्षण नहीं दिखाई देते !

झोटिंग—राजपूतो का पुराना दम्भ, मिथ्या गर्व, झूठी मर्यादा !

धनेश्वर—पितृभक्ति !

झोटिंग—हाँ पितृभक्ति ! जिस से देश पर विपत्ति टूट पड़े।

धनेश्वर—चाहे जो हो कीर्तिमान जी ! मै तो युवराज की प्रतिज्ञा देख कर आश्चर्य-चकित रह गया ! कितना उल्लास था, कितना हर्ष था ? इतना त्याग और लेश-मात्र भी चिन्ता नही !

झोटिंग—विधि न टलेगी । मेवाड़ की शान्ति पर जो चिनगारी डोडियो के आगमन के रूप मे पड़ी थी, वह इस शपथ से सुलग उठी है और महाराणा के विवाह पर ज्वाला बन जाएगी । फिर कौन जाने इस ज्वाला मे कौन कौन भस्म हो ?

धनेश्वर—और कीर्तिमान जी ! आप......

झोटिंग—मै अपनी प्रार्थना जारी रखूँगा। राणा ने हमे जागीरें दी हैं, हमे सुख दिया है, आराम दिया है, उन पर विपत्ति आते देख कर हम कैसे पीछे हट जाएँ।

धनेश्वर—आप धन्य हैं !

झोटिंग—मेरी जागीर का ध्यान रखना, मेरे बाल-बच्चो का ध्यान रखना ! मै उपाय करूँगा । भगवान एकलिंग राजकुल को सुमति दें, विधि का प्रहार टल जाए !

वापस कन्दरा में जाते हैं, धनेश्वरराय कुछ
क्षण खडे रहते हैं, फिर धीरे-धीरे चलते हैं।

पट-परिवर्तन

८

महलों में मार्ग के किनारे की वाटिका

युवराज चंड और राघव

चड—क्यो भाई तुम्हे मेरी प्रतिज्ञा उचित नही जान पडी ?

राघव—नहीं भाई उचित क्यो नही जान पड़ी। संकुचित स्वार्थप्रियता के दृष्टि-कोण से, तुम्हारा यह व्रत, यह त्याग, चाहे मूर्खता और राजनीतिक-अदूरदर्शिता का ही द्योतक समझा जाए और शायद स्वार्थी, जीवन को ऐश्वर्य के तराजू मे तोलने वाले उस पर हँसे, पर यदि मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान राम का, केवल अपने कुल की मर्यादा पालने के निमित्त राजपाट छोड़ कर चौदह लम्बे वर्षो के लिये जङ्गलो की खाक छानना सराहनीय है, तो अपने प्रण की रक्षा के लिये तुम्हारा यह व्रत भी कम प्रशंसनीय नही और जिस भाँति उनका नाम इतिहास मे उज्ज्वल अक्षरो से लिखा गया, इसी तरह तुम्हारा भी लिखा जाएगा। आने वाली नसले तुम्हारा नाम लेते ही गर्व से फूल उठा करेगी।

चड—किन्तु, भाई तुम प्रसन्न दिखाई नहीं देते। जब मैं भगवान एकलिंग के मन्दिर मे शपथ ले रहा था तो मैंने देखा—तुम्हारा मुँह सूखा हुआ है और तुम्हारे हृदय मे न जाने कैसे विचार उद्वेलित

होकर तुम्हारे मुख पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं।

राघव—हाँ भाई ! मुझे खुशी नहीं हुई।

चंड—क्यो ?

राघव—इस लिये कि मुझे पण्डितवर कीर्तिमान की भविष्यद्वाणी स्मरण हो आई। वे अनिष्ट की आशंका करते थे और वह हमारे सामने आ गया। आपके सिंहासन-त्याग और भविष्य मे किसी वंश के हाथो उसके संचालन से क्या परिणाम निकल सकते हैं, उसे हम अभी से क्या जान सकेंगे ? पिता जी वृद्ध हो गए हैं। इस आयु मे उनका विवाह हितकारी होगा या नहीं, यह कौन कह सकता है ? निश्चित बाते आपके व्रत से अनिश्चित हो गई हैं। मेवाड़ का भाग्य संशय के गर्त मे जा पड़ा है।

चंड—लेकिन पिता जी का वाक्य ! उससे उनकी......

राघव—विवाह के प्रति अभिलाषा प्रकट होती थी, आप यही कहना चाहते हैं और उनकी तनिक सी इच्छा के लिये आपने यह महान व्रत धारण कर लिया। किन्तु इसका मेवाड़ के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है, उसकी जनता को किन विपत्तियो का सामना करना पड़ सकता है, इस बात को सोच कर मेरा हृदय उद्विग्न हो जाता है। पितामह भीष्म ने अपने पिता की इच्छा के लिये महान व्रत तो धारण किया, किन्तु उससे हस्तिनापुर की जनता पर कौन सी आपत्तियों के पहाड़ टूटे और कितने व्यक्तियो के

जीवन-उद्यान पतझड़ का शिकार हो गए, यही सोच कर मैं बेचैन हो जाता हूँ।

युवराज उद्भ्रान्त से एक स्थान पर बैठ जाते हैं।

राघव—मुझे आप आज्ञा देंगे। मुझे नगर मे कई स्थानों पर जाना है।

प्रणाम करके प्रस्थान

युवराज उठ कर घूमते हैं, फिर रुकते हैं।

अपने आप—कर्तव्य ! तेरा पथ इतना कठिन है ?

निश्वास छोड़ते हैं और उद्विग्नता से घूमते हैं।

फिर वहीं बैठ जाते हैं। रानी प्रवेश करती है।

अपने आप में खोई हुई तेज़ी से जा रही है।

चंड—माँ !

रानी—ओह ! तुम यहाँ बैठे हो, मैंने तुम्हे नहीं देखा।

चंड—माँ यह तुम्हारी कैसी दशा है।

रानी—कुछ भी तो नहीं, बेटा !

चंड—यह उड़ा-उड़ा चेहरा, यह बिखरे-बिखरे बाल, यह फटी-फटी आँखे, माँ—माँ !

रानी—बेटा !

चंड—तुम्हे मेरे प्रतिज्ञा लेने में बहुत दुख हुआ।

रानी—नहीं बेटा ! तुम ने ठीक किया, तुम ने मेरी शिक्षा को चरितार्थ किया। मैं—मेरी चिन्ता न करो, अपने कर्तव्य पर डटे

रहो, मुझे कोई दुख नहीं। जो प्रतिज्ञा की है, (कंठ भर आता है।) उसका जीवन भर पालन करो, उससे गिर गए तो मुझे सुख में भी दुख प्रतीत होगा और उस पर डटे रहे तो मैं दुख को भी सुख करके मानूँगी।

तेजी से अपने रास्ते चली जाती है।

युवराज फिर उठ कर घूमते हैं।

चंड—(अपने आप) सब दुखी हैं, सब दुखी हैं। शोक-सागर में डूबे हुए हैं।

हेमवती अपने ध्यान में मग्न आ रही है।

दोनों टकरा जाते हैं। युवराज उसे कधों से थाम लेते हैं।

चंड—हेम! तुम भी दुखी हो, तुम्हे भी मेरी इस प्रतिज्ञा पर दुख है, तुम भी मुझे बुरा समझती हो?

हेमवती—बुरा! भाई, कैसी बातें करते हो, मुझे अपने इस सत्यव्रती भाई पर गर्व है। मैं तो प्रार्थना करती हूँ कि हर राजपूतनी को तुम जैसा वीर भाई मिले!

चंड—तुम्हे दुख नहीं हुआ बहिन?

हेमवती—दुख, दुख तो भाई मन की बात है। हम उसी को दुख मानते हैं, जिसमे हमे दुख महसूस होता है, चाहे लोग हमे कितना ही सुखी समझें। अभी, अपने आगमन के बाद इन दिनों मे मैंने तुम्हे सच्चे राजपूत के जिस रूप मे देखा है, उसकी मैंने कल्पना भी न की थी। मैंने तुम्हे जैसे समझा था, उससे कहीं अधिक कर्तव्य-परायण और दृढ़-प्रतिज्ञ पाया।

चंड—किन्तु माँ !

हेमवती—माँ—उनकी न पूछो। वह अपने दुख को दबाती अवश्य हैं, परन्तु उनका दुख, उनके अन्तर की वेदना, जैसे उनके प्रत्येक अंग से फूटी पड़ती है। सारी रात उन्होंने घूम-घूम कर बिता दी। तुम नहीं समझते। जिसका पुत्र राज्य का अधिकारी होता हुआ भी उसे त्यागने का प्रण कर ले, जिसको अपना पति हाथों से निकलता हुआ प्रतीत हो, जिसको अपने समस्त अधिकार छिनते हुए दिखाई दे और फिर जिसकी आयु बुढापे के पथ पर शीघ्रता से अग्रसर हो, उसके दुख का हम तुम अनुमान नही कर सकते, परन्तु वे क्षत्राणी हैं, कर्तव्य के पथ पर अपने दुखों को झेलना भली-भाँति जानती हैं।

चलने को उद्यत होती है।

चंड—बहिन, मै कृतज्ञ हुआ। मै तुम्हे किस तरह धन्यवाद दूँ? तुम आदर्श बहिन हो। यदि तुम जैसी बहिने सबके हो, तो कोई कायर न हो, कर्तव्य पथ से हट जाने वाला न हो। मैं धन्य हूँ, कि मुझे तुम जैसी बहिन मिली है। मै व्यथित था, दुखी था। मै समझता था मेरे कर्तव्य-पालन ने सब को संकट मे डाल दिया है। अब कोई गम नहीं। दुख आते हैं आएँ! कष्ट आते हैं आएँ!! तुम देखोगी मैं पत्थर बन जाऊँगा, चट्टान बन जाऊँगा। तुम्हारे जैसी बहिन पाकर भाई कर्तव्य के पथ से हट जाएँ, कैसे हो सकता है?

हेमवती—वीर भाई, यही ठीक है। तुम्हारी बहिन तुम से यही

आशा रखती है। क्या राजपूतनियाँ अपने भाई-बेटों को सहर्ष युद्ध मे नहीं भेज देतीं ? क्या उससे उन्हे दुख नहीं होता ? होता तो है, पर कर्तव्य उन्हे बढ़ावा देता है। तो क्या केवल दुख के भय से, कर्तव्य के इस युद्ध मे फाँदने से मैं तुम्हे रोकूँगी ? चलो भाई ! समस्त जीवन एक युद्ध है। इससे माँ, बाप, भाई, बहिन किसी का ध्यान न करो। कर्तव्य ही तुम्हारा साथी हो, प्रतिज्ञा ही तुम्हारी संगिनी हो।

पटाक्षेप

तृतीय अंक

१

दो ब्राह्मण विवाहोत्सव में पाई हुई गठड़ियाँ
सँभाले, बातें करते हुए प्रवेश करते हैं।

एक— आखिर महाराणा का विवाह हो गया।

दूसरा—हाँ, ऐसा उल्लास-हीन विवाह भी कभी न देखा होगा। ऐसा मालूम होता था, जैसे सब पकड़ कर विवाह मे शामिल किए जा रहे हो। जैसे उन्हे उनकी इच्छा के विरुद्ध, खुशी मे नही, गम में शामिल किया जा रहा हो।

पहला—सब हँसते थे, किन्तु किसी के चेहरे पर भी आन्तरिक प्रसन्नता का चिन्ह न था—खोखले कहकहे, वास्तविक प्रसन्नता से रहित!

दूसरा—और खुशियाँ, बाजे, नाच, गाने? जैसे वृद्ध की अर्थी के साथ! यह विवाह था? विवाह की नकल मे भी इस से अधिक खुशी, इस से अधिक उल्लास होता।

पहला—सब के चेहरों पर व्यथा की एक गहरी छाप थी, किन्तु हँस रहे थे, जैसे दुख की सीमा पर मनुष्य हँस देता है, हृदय के दुख को छिपा कर।

दूसरा--कोई भी प्रसन्न नहीं, एक व्यक्ति भी प्रसन्न नहीं, वर-वधु भी।

पहला--हाँ, वर-वधु भी।

दूसरा--(नेपथ्य की ओर देख कर) यह दीपमाला हो रही है। नगर पर छाए हुए दुख के गहरे अन्धकार को कृत्रिम प्रकाश से दूर किया जा रहा है।

पहला--मालूम होता है विधि से मेवाड़ की सम्पन्नता और खुशी देखी नहीं गई और विवाह के रूप में उसने यह विपत्ति भेज दी।

दूसरा-- यह विवाह--युवराज ने इसी के लिये अपना अधिकार छोड़ दिया, राणा वृद्धावस्था में, युद्ध पर जाने के बदले, नयी वधु ले आए और महारानी अधिकार-हीन होगई।

पहला--चलो जी ! दान तो खूब मिला।

दूसरा--हाँ ! दान तो खूब मिला।

बाजों की आवाज़ आती है।

पहला--लो यह बाजे बजने लगे।

दूसरा--जैसे नगर पर छाया हुआ अवसाद मुखरित हो उठे।

पहला--जैसे अँधेरे की भयावहता दूर करने के लिये कोई गाने लगे।

बातें करते चले जाते हैं।

पट-परिवर्तन

२

चित्तौड़ का नया राज-भवन

हंसाबाई और मालती

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) यह और वह, दोनो दशाओ में कितना अन्तर है ? एक की कल्पना मे सुख है, सुख मे पुलक है, पुलक में शान्ति है। दूसरी के ध्यान मे ही दुख है, दुख मे पीड़ा है, पीडा में अशान्ति है। यदि युवराज नारियल स्वीकार कर लेते, यदि... ..

आकुलता से घूमती है।

मालती—महारानी ! जो हो चुका, हो चुका, अब उसकी सोच करने से लाभ ?

हंसाबाई—(निराशा से) हाँ ! कुछ लाभ नहीं ? मैं स्वय सोचती हूँ मालती, मुझे क्या हो गया है ? मस्तिष्क मे क्यो हलचल मची हुई है, रोम-रोम मे क्यो आग धधका करती है ? चंड ! उहँ, उनके साथ जीवन की कल्पना ही क्यो ? यह तोपपा है । जो बीत गया, बीत गया, अब अतीत को स्मृति से लाभ ? जो हाथ नहीं आ सकता उसकी इच्छा ही क्यो ? जीवन की पुस्तक के पिछले पृष्ठ फाड़ डालूँगी। अब तो नये अध्याय का आरम्भ होगा।

मालती—सतियों के लिये यही उचित है महारानी। सच्ची क्षत्राणी के लिये पति की सेवा ही सर्वस्व है। आज इतने दिनों से आप किसी से बोली नहीं। आपने किसी से बात तक नहीं की। कुमार आ-आ कर मुड़ गए, स्वयं रणमल आए और चले गए।

हंसाबाई—(जैसे अपने आप) तैयार करना होगा, अपने आप को कर्तव्य के पथ पर चलने के लिये तैयार करना होगा। हृदय दुखी हो, पर मुख प्रसन्न दिखाई दे, रोने की इच्छा हो पर अधर हँस पड़े, रिक्त हृदय अनुराग सीख जाए।

दासी का प्रवेश

दासी—महाराणा आ रहे हैं।

प्रस्थान

मालती—ठहरो मै भी आती हूँ।

प्रस्थान

हंसाबाई—(अपने आप) आओ नाथ! तुम आज देखोगे कि मै कितनी बदल गई हूँ। आज अचानक मैं चंचल और उच्छृंखल हँसा से सौम्य और गम्भीर सम्राज्ञी हो गई हूँ।

महाराणा लक्षसिंह का प्रवेश

हंसाबाई उनका अभिवादन करती है।

राणा आकर उसके पास बैठ जाते हैं।

लक्षसिंह—कहो आज जी कैसा है? वैद्य कहते हैं कि यहाँ की जल-वायु तुम्हारे अनुकूल नहीं हुई। कहो तो हम

चित्तौड़ से बाहर किसी अच्छे स्थान पर चले जाएँ।

हँसाबाई—आप के चरणों मे, नाथ! मुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं। दिल कुछ उदास अवश्य था, परन्तु अब तो धीरे-धीरे मैं यहाँ से अभ्यस्त हो रही हूँ।

लक्षसिंह—(प्रसन्नता से) युवराज तुम्हे प्रणाम करना चाहता था।

हंसाबाई—मैं आज उन से मिलूँगी।

लक्षसिंह—कुमार राघव अपनी नयी माँ को देखने के लिये उत्सुक था।

हंसाबाई—आप उन्हे बुला भेजिए।

लक्षसिंह—मै बहुत प्रसन्न हुआ, (हंसाबाई के कन्धे पर हाथ रखते हैं, स्वर तनिक करुण हो जाता है।) वास्तव में हंसा! मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, मैं तुम्हे अपने साथ नरक में घसीट लाया हूँ। तुम यहाँ आकर सुखी न हो सकीं।

हंसाबाई—नहीं नाथ! मैं तो आपकी अपार कृपा और प्रेम से बहुत सुखी हूँ।

लक्षसिंह—(व्यंग से हँस कर) वृद्ध का प्रेम और कृपा—पतझड़, शिशिर, गाम्भीर्य! खैर मैं प्रयास करूँगा प्रिये, यदि मुझ से तुम्हे सुख न मिले तो दुख भी न हो। तुम्हारी कोई भी अभिलाषा पूरी होने से न रुकेगी। मैं अभाव को श्रद्धा और भक्ति से पूरा कर दूँगा।

हंसाबाई--आप कैसी बातें करते हैं महाराज! चरणों की धूल को आप सिर पर स्थान दे रहे हैं। वह तो वहीं प्रसन्न है।

लक्षसिंह—हंसा!

हंसाबाई—महाराज!

लक्षसिंह—(गद्गद होकर) तुम सुखी हो?

हंसाबाई—बिलकुल। (मुसकराती है।)

लक्षसिंह—तो मुझ से अधिक कौन प्रसन्न है? मेरी सब से बड़ी चिन्ता दूर हो गई। मैं राज्य के कामो मे अब अधिक ध्यान दे सकूँगा। आज तक मैं अपने आप में न था, पश्चात्ताप का बोझ मेरा गला दबा रहा था, आज तुमने मुझे जिला दिया।

हंसाबाई—(चुप रहती है।)

लक्षसिंह—कहो, तुम्हे किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं?

हंसाबाई—दासी हर प्रकार से सुखी है।

लक्षसिंह—तुम इस महल मे उदास रहती होगी, मैं सोचता हूँ—बड़ी रानी से कह कर भारमली को तुम्हारे पास भिजवा दूँ।

हंसाबाई—भारमली कौन?

लक्षसिंह—मेवाड़ की प्रसिद्ध गायिका।

हंसाबाई—मैं इस कृपा के लिये अनुगृहीत हूँ।

राणा उठते हैं।

लखसिंह—मैं अभी जाकर उसे भेजता हूँ और युवराज से भी कहता हूँ कि अपनी माँ की सेवा मे उपस्थित होकर आशीर्वाद ले।

प्रस्थान

हंसाबाई—माँ, (व्यग से हँसती है।) विधि की कैसी विडम्बना है! अब युवराज मुझे माँ कहेंगे, पर नहीं, मैं कुछ न सोचूँगी, मैं अपने आप को व्यस्त रखूँगी, मैं भूलने का प्रयास करूँगी।

मालती प्रवेश करती है।

हंसाबाई—देखो मालती, मैं आज बदल गई हूँ, अब तुम यहाँ किसी दुखित, व्यथित, अपने भाग्य को कोसने वाली हंसा को न देखोगी, तुम्हे अब बदली हुई हंसा दिखाई देगी।

मालती—यही आपका कर्तव्य है। इसी मार्ग मे सुख और शान्ति है। जीवन तो समझौते का दूसरा नाम है महारानी! इसके पग-पग पर परिस्थितियो से समझौता करना पड़ता है और यदि अपने आपको उनके अनुकूल न बनाया जाए तो दुख, अवसाद के सिवा कुछ हाथ नही आता।

दासी प्रवेश करती है।

—युवराज आ रहे हैं।

फिर वापिस चली जाती।

मालती भी जाना चाहती है।

हंसाबाई—मालती, तुम मेरे पास रहो, तुम मेरे पास रहो,

मेरा दिल धडक रहा है, मेरा गला सूख रहा है।

युवराज विनम्र भाव से प्रवेश करते हैं।

युवराज—प्रणाम करता हूँ माता !

दोनों हाथ जोड़ते हैं।

हंसाबाई नहीं बोलती, आँखें नीची किए काँपती है।

युवराज—माता, आशीर्वाद दो ! तुम्हारा पुत्र तुम्हारे सामने खड़ा है, आशीर्वाद दो कि वह तुम्हारी सेवा मे तत्पर रह सके, अपने कर्तव्य से विचलित न हो।

हसाबाई काँपते काँपते बैठ जाती है।

युवराज—माँ, पुत्र से डर कैसा ? वह तो तुम्हारा दास है, तुम्हारा तुच्छ सेवक है।

हसाबाई का काँपना बन्द हो जाता है।

वह एक क्षण आँखें उठा कर देखती है

फिर आँखें नीची कर लेती है।

हसाबाई—युवराज !

आगे नहीं बोल सकती, केवल काँपती है।

युवराज—युवराज नहीं, माँ ! पुत्र कहो, मैं तो केवल अपनी माँ के चरणो में प्रणाम करने आया हूँ और कहने आया हूँ कि आप इस तुच्छ को सदैव अपना सेवक समझें।

प्रणाम करके चले जाते हैं।

हंसाबाई का रग पीला पड़ जाता है,

और वह वहीं लेट जाती है।

मालती—(चीख कर) कोई है, कोई है।

दासियाँ भागी आती हैं।

मालती—महारानी की तबीयत ठीक नही, तुम पंखा करो मै केवड़ा आदि लाऊँ।

पट परिवर्तन

३

रानी हंसाबाई के महल के पीछे उद्यान

वाटिका की ओर बढ़ा हुआ चबूतरा दिखाई देता है।

बड़ी रानी, सुकेशी की अँगुली पकड़े, प्रवेश करती है।

सुकेशी—इधर अँधेरा है, मुझे डर लगता है, मैं जाऊँगी।

मालती है।

रानी—नहीं, नहीं, वहाँ चल के बैठेंगे, तू सुकेशी है न, मेरी बच्ची है न, बड़ी अच्छी है न, देख यहाँ कोई अँधेरा नहीं, आकाश मे चाँद कैसा चमक रहा है, और तारे नन्हे नन्हे दियो की भाँति, अँधेरे को दूर करने मे उसकी सहायता कर रहे हैं। चल तुम्हें इन की बाते सुनाऊँ।

सुकेशी—मुझे नींद आ रही है, मैं सोऊँगी।

रानी—अभी से सो जाओगी, अज तक कभी इतनी जल्दी नहीं सोई। छोटी माँ के पास इस समय तुम खेला करती हो।

सुकेशी—मुझे छोड़ दो, मैं छोटी माँ के पास जाऊँगी, मैं वहाँ खेलूँगी।

रानी—हाँ हाँ, खेलना, मैं तुम्हें बड़ी सुन्दर और विचित्र कहानी सुनाऊँगी।

सुकेशी—कहानी ?

रानी--हाँ, हाँ, बड़ी सुन्दर कहानी !

सुकेशी—धाय मुझे बड़ी अच्छी कहानियाँ सुनाती है।

रानी—धाय से भी अच्छी कहानी सुनाऊँगी।

सुकेशी—परियो की कहानी ?

रानी—परियो और देवों की कहानी !

वृक्ष की छाया में जाती है।

रानी—देख, यहाँ बैठ, मेरे पास, मेरी गोद में और मै यहाँ गिरे हुए वृक्ष के तने पर बैठती हूँ, (जैसे अपने आप) कितनी बार मै यहीं अँधेरे मे आकर बैठी हूँ, ! कितनी राते मैने यहाँ जाग कर काट दी हैं !!

हंसाबाई के कमरे में प्रकाश होता है।

सुकेशी—माँ, छोटी माँ......

रानी—हाँ, छोटी माँ, वह अपने कमरे में आ गई हैं, वह तुम्हे प्यार करती हैं ?

सुकेशी—करती हैं।

रानी—और राणा जी ?

सुकेशी—करते हैं, नहीं, अब नहीं करते, कभी कभी करते हैं।

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—जब वे इकट्ठे होते हैं तो क्या बातें करते हैं ?

सुकेशी—कहते हैं इसका विवाह बड़ी धूम-धाम से होगा।

माँ, मेरा विवाह कब होगा ?

रानी—जब तू बड़ी हो जाएगी।

सुकेशी—राजकुमार से होगा न माँ ?

रानी—हाँ राजकुमार से।

सुकेशी—माँ! मैं तो तुमसे विवाह करूँगी।

रानी—दुर पगली, कभी स्त्रियाँ भी स्त्रियो से विवाह करती हैं ? सुकेशी।

सुकेशी—हाँ माँ।

रानी—कभी वे मेरे सम्बन्ध मे भी बातें करते हैं ?

सुकेशी—नहीं, वे मेरे सम्बन्ध मे ही बातें करते हैं।

रानी—(शून्य में देखती हुई) मैं उतर गई हूँ, उनकी याद से उतर गई हूँ, अपने शिखर से उतर गई हूँ।

सुकेशी—माँ, सर्दी लग रही है।

रानी—यह तो वसन्त की हवा है, तुम्हे अच्छी नहीं लगती ?

सुकेशी—नहीं माँ, मुझे ठंड लगती है। तुम्हे कैसी लगती है माँ ? तुम्हे यह अच्छी लगती है ?

रानी—मुझे भी अच्छी नहीं लगती, वसन्त की हवा, पतझड़ की वयार मेरे लिये अब इन दोनो मे कोई अन्तर नहीं, सब कुछ एक सा बीत रहा है, एक रस और एक रंग !

सुकेशी—(चुप रहती है।)

रानी—सुकेशी !

सुकेशी—हाँ माँ !

रानी—वे कभी रूठते नही ?

सुकेशी—वे प्रसन्न रहते है, सदैव प्रसन्न रहते हैं, कभी कभी मुझे देख कर हँस पडते हैं।

रानी—छोटी माँ तुम्हे जाने को नही कहतीं ?

सुकेशी—नहीं, वे डरती हैं।

रानी—डरती हैं ?

सुकेशी—जब मैं जाना चाहती हू, तो वे कहती हैं, न जाओ, न जाओ।

रानी—और राणा जी, वे कुछ नहीं कहते ?

सुकेशी—वे चुप रहते हैं।

रानी—तुम छोटी माँ को देखना चाहती हो ?

सुकेशी—हाँ हाँ, मैं देखना चाहती हूँ।

रानी—मैं तुम्हे अपने कन्धो पर उठा लूँगी।

सुकेशी—न, मुझे डर लगता है, मै गिर पड़ूँगी।

रानी—नहीं, मैं तुम्हे न गिरने दूँगी, मै इस वृक्ष के तने पर खड़ी हो जाऊँगी और तुम मेरे कन्धो पर चढ़ कर देखना।

रानी वृक्ष के सहारे तने पर खड़ी होती है, सुकेशी उसके कन्धे पर चढती है, रानी काँपती है।

सुकेशी—अहा, हा, माँ ! मै देख रही हूँ, छोटी माँ को देख रही हूँ।

रानी—अकेली हैं वे ?

सुकेशी—नहीं, पिता जी भी हैं।

रानी—(कॉपते स्वर में) क्या कर रहे हैं ?

सुकेशी—छोटी माँ को देख रहे हैं।

रानी—(और काँपते स्वर में) और छोटी माँ ?

सुकेशी—वे दीवाल की ओर देख रही है।

रानी—(और भी कॉपते स्वर में) दूर बैठे हैं ?

सुकेशी—नहीं, समीप बैठे हैं।

रानी—उतर आओ, उतर आओ, मै थक गई हू, मैं क
रही हूं।

सुकेशी—नहीं माँ, देखो पिता जी... 'ओह माँ, तुम क
रही हो ? मुझे उतार दो, मुझे उतार दो !

रानी सुकेशी को उतार देती है।

रानी—तुम्हारे पिता जी क्या कर रहे थे।

सुकेशी माँ का मस्तक चूमती है।

रानी दीर्घ निश्वास छोड़ती है।

सुकेशी—माँ ! अब वह हमारे महल मे क्यो नहीं आते ?

रानी—(हँस कर) अब उन्हे छोटी माँ ने वन्दी बना लिया है
(दीर्घ निश्वास छोड़ती हुई) वह देखो, हेमलता तुम्हे ढूँढती आ र
है। चलो चलें।

सुकेशी की अँगुली पकड़े धीरे-धीरे चली जाती है।

पट-परिवर्तन

४

राज वाटिका

कुमार राघव और युवराज चंड

राघव—मै देखता हूँ, नयी माँ नाराज है।

चंड—चुप .....

राघव—कोई झगड़ा हो गया था क्या आप मे और उन मे ?

चंड—चुप .....

राघव—वे शायद अपने भाई के हाथ में खेल रही हैं।

चंड हँसता है

राघव—आप हँसते हैं।

चंड—(शून्य में देखते हुए) कर्तव्य का पथ बड़ा दुर्गम है राघव !

राघव—भाई......

चंड—(वैसे ही देखते हुए) मैंने कब सोचा था, माँ से इतने कठिन शब्द कहने पडेगे ?

राघव—कठिन शब्द ! लेकिन बात क्या हुई ?

चंड—मैंने अपना कर्तव्य पूरा किया राघव, परोक्ष रूप मे भी पिता जी ने जिस नारी के लिये इच्छा प्रकट की वह फिर मेरे लिये माता के बराबर हो गई। उस नारी के मनोभावो को जानना फिर मेरा काम न था।

राघव—इस बात को फिर किस ने चलाया ?

चंड—(अँगूठे से घास को कुरेदते हुए) कर्तव्य पर चलने वाले की दृष्टि राघव, अपने कर्तव्य की ओर ही रहती है। मेरी दृष्टि भी वहीं थी। दूसरे की भावनाओ की बात मेरे सामने न थी। किसी दूसरी नारी का जिक्र ही क्या, अपने पिता की बात मैंने नहीं सुनी, भाई और माँ की बात मैंने नही मानी। मैंने उन्हे रुष्ट कर दिया। क्योंकि एक बार जिस नारी को मैंने माँ के रूप मे देखा उसे किसी दूसरे रूप मे नहीं देख सकता था। लेकिन नयी माँ......

राघव—हाँ नयी माँ .....

चड—उनको इस बात का गुस्सा है। कर्तव्य के पथ पर मैं अपनी बलि दे सकता था किसी दूसरे की नहीं, ऐसा उनका विचार है।

राघव—ऐसा उनका विचार है ?

चड—शायद वे मुझ से छोटी हैं, मुझे पुत्र के नाम से पुकारते उन्हे संकोच होता है, उन्होने मुझे युवराज कह कर पुकारा, मैंने कहा—मुझे युवराज न कह कर पुकारो माँ ! उनका अनुरोध था, मैं उन्हे माँ कह कर न पुकारूं, उनका नाम लेकर बुलाऊं। बस बहस चल पड़ी। सब अगली पिछली बाते हुई। मैंने उन्हे समझाया—माँ मैंने अपना कर्तव्य पालन किया था !

वे बोलीं—और इस कर्तव्य की वेदी पर तुम ने बलि किस की दी ?

मैंने कहा—मेरे पास जो था, मेरा जो अधिकार था, वह मैंने

छोड दिया, और मेरे पास रहा ही क्या है ? जान है, समय आने पर मै उसका भी मोह न करूँगा।

वे बोलीं—हाँ, तुमने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया, किन्तु तुम्हे दूसरो के सर्वस्व को बलिदान करने का क्या अधिकार था ?

मैंने कहा—माँ तुम भूलती हो। कर्तव्य के पथ पर चलने की दृष्टि सदैव उसके पथ पर रहती है। वह जो कर्तव्य समझता है, वही करता है। पिता जी के वाक्य पर मैंने हृदय मे तुम्हे माँ समझ लिया था। फिर जिसे माँ कह दिया उसे माँ कह दिया, यदि तुम किसी को पुत्र कह दो क्या फिर ....नहीं, मैं यह शब्द भी अपनी जिह्वा पर नहीं ला सकता। उन परिस्थितियो मे मेरा जो कर्तव्य था मैंने पूरा किया, इन परिस्थितियो मे तुम्हारा जो कर्तव्य है, वह तुम पूरा करो......

खोया खोया सा घूमता है, फिर

रुक कर

वे बोलीं—नहीं युवराज मुझे माँ न कहो।................ ....

......इतना कह वह आगे बढ़ने लगीं। मैंने गर्ज कर कहा—माँ वहीं खड़ी रहो:—जो हाथ माँ के संकेत पर धरती को उलट सकते हैं, वे उसी माँ को अपने पथ से विचलित होते देख कर छुरी भोक सकते हैं।

यह कह कर मै आने लगा था कि उन्होने क्रोध से कहा—युवराज तुम्हें गर्व है, तुम अपमान कर सकते हो, मेवाड़ की रानी का

अपमान कर सकते हो, जानते हो, इसका परिणाम क्या हो सकता है?

मै मुड़ा, मुझे जोश आगया। मेवाड़ की रानी—मैंने कहा—मेरी माँ यदि संसार भर की सम्राज्ञी होकर भी अपने कर्तव्य के पथ पर से विचलित होती तो मै पुत्र होता हुआ उसका गला घोट देता। भाग्य बलवान् है, जहा वह हमे रखता है, जिन परिस्थितियों में हमे डालता है, उन में कर्तव्य को सामने रखकर हमे चलना चाहिए। भाग्य ने आपको माँ और मुझे पुत्र बना दिया। तो क्या हम इस पवित्र नाते को तोड़ देगे, क्या तुम क्षत्राणी न रहोगी, क्या मैं क्षत्रिय न रहूँगा ? मां मेवाड़ की रानी को यह शोभा नही देता।

फिर उद्विग्नता से घूमते हैं

पर्दा बदलता है

हंसाबाई अपने भवन की खिड़की में

बाहर शून्य में देख रही है, फिर मुड़ती है,

दीर्घ निश्वास छोड़ती है फिर

—नही, मै मेवाड़ की रानी नहीं, मै सम्राज्ञी नहीं, मैं केवल नारी हूँ, और नारी के साथ पुरुष का क्या ऐसा ही व्यवहार होना चाहिए। क्या बिना सोचे समझे पुरुष को उसे अपने दम्भ अपनी झूठी मर्य्यादा की वेदी पर बलि चढ़ा देना चाहिए। कर्तव्य, कर्तव्य मैं देखूँगी तुम कर्तव्य के कितने पुजारी हो।

उद्विग्नता से घूमती है।

दासी को आवाज देती है

—दासी

दासी का प्रवेश

—मंडोवर कुमार से कहना, कल प्रात: मुझे मिले।

दासी का प्रस्थान

फिर घूमती है

पट परिवर्तन

———

५

महलों मे उपवन

श्वेत चबूतरा, चाँदनी रात

रणमल और चंड प्रवेश करते हैं।

चड—इस जगह ?

रणमल—हाँ इसी जगह ! इस श्वेत चबूतरे पर, मौलिश्री के वृक्षों के नीचे, वह अपना मादक गीत गाती है और कुमार मुग्ध होकर सुना करते हैं।

चड—राघव ?

रणमल—हाँ युवराज !

चड—मै समझा, मैं समझा, वह क्यो अब खोया खोया सा रहता है, क्यो अब दिन प्रतिदिन वेपरवाह सा होता जा रहा है, क्यो अब जनता के कामो मे दिलचस्पी नहीं लेता ?

रणमल—इस सुन्दर गायिका ने ...

चड—(जैसे अपने से) हाँ, इस सुन्दर गायिका ने ....

रणमल—उनको अपने आप में नहीं रखा।

चड—(जैसे अपने से) यह तो मृत्यु है।

रणमल—क्या मृत्यु है युवराज ?

चंड—यह रूप का उन्माद ! जब यह कर्तव्य के पथ मे रुकावट

वन जाता है, तो इससे मनुष्य का नैतिक पतन हो जाता है, उसकी नैतिक मृत्यु हो जाती है।

रणमल—वे आ रहे हैं, हमे छिप जाना चाहिए।

चंड—हाँ हमे छिप जाना चाहिए। (धीरे धीरे जैसे अपने आप) सो गया। राघव! तू विवेक की आँखे बन्द करके सो गया। किन्तु तुम्हे उठना होगा, मै तुम्हे उठा कर दम लूँगा!

दोनों छिप जाते हैं।

कुमार राघव और भारमली प्रवेश करते हैं।

राघव—(लम्बी साँस लेकर) ओह! यह कैसी शुभ्र ज्योत्स्ना है?

भारमली—और उसमें यह धवल, श्वेत चबूतरा!

राघव—जैसे चाँदी के पानी मे तैरता हुआ हंस।

भारमली- मौलिश्री की मादक सुगन्ध!

राघव—और. ठंडी हवा के झोंके! ऐसे मे तुम्हारा थरथराता हुआ मादक गीत!! भारमली, पागल हो जाता हूँ। अपने आप को भूल जाता हूँ। तुम जादू करती हो!

दोनों मौलिश्री की छाया में बैठते हैं।

चाँद की किरणें छन कर दोनों पर पड़ती हैं।

राघव—भारमली, गाओ! मेरी आत्मा आकुल हो रही है। वही कल वाला गीत गाओ। वही गान—जो बेसुध कर दे, सुला दे, भूत और भविष्य को वर्तमान मे लीन कर दे।

भारमली—कुमार !

राघव—कहो ?

भारमली—तुम मेरा गाना सुनना चाहते हो ?

राघव—हाँ ! मै गाना सुनना चाहता हूँ, गाना ही सुनना चाहता हूँ भारमली ! यह मेरे सामने एक अभिनव संसार की रचना कर देता है। जिसमे गत नहीं, आगत नहीं वर्तमान है, विस्मरण है, भूल जाना है।

भारमली—तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो ?

उनके कन्धे से सिर लगा देती है।

कुमार चौंकते हैं, पर उठते नहीं।

भारमली—कुमार !

राघव—(तन्मयता से उस के बालों को सुलझाते हुए) भारमली !

भारमली—तुम केवल मेरा गाना ही सुनने आते हो, मैं आज न गाऊँगी। (कुमार की ओर मुग्ध आँखों से देखती है)

राघव—क्यो भारमली !

चंड वृक्ष के पीछे से निकल कर सामने आते हैं।

चंड—राघव !

दोनों चौंकते हैं।

चंड—राघव !

राघव—(चुप)

चंड—राघव मै क्या देखता हूँ—जिस ने अपना सर्वस्व जनता के अर्पण कर दिया हो, उस के लिये क्या यह उचित है।

राघव—(चुप)

चंड—जनता का प्रेम-पात्र वनने के लिये, भाई! इस तुच्छ प्रेम को त्यागना होगा। उस विशाल, महान प्रेम के आगे, इस तुच्छ वासना-मय प्रेम के लिये कहाँ स्थान है ? राघव तुम ने जनता की सेवा का व्रत ही क्यो लिया ? जनता का सेवक, जनता का प्रेमी तो उदारता से प्रेम करना जानता है। वह एक का न होकर सब का हो जाता है और तुम अपने उस विशाल प्रेम को इतना संकुचित, इतना सीमित कर रहे हो! उस उच्च पद से इतना नीचे गिर रहे हो !!

राघव—मुझे......

चंड—तुम्हे यह सब कुछ छोड़ देना होगा, तुम्हे चित्तौड से बाहर चला जाना होगा, संयम सीख कर फिर आना होगा।

राघव—(आखें धरती में गाड़े हुए) मैं चला जाऊँगा भाई।

चंड—(भारमली की ओर देख कर) और भारमली! पिता जी ने तुम्हे छोटी माँ के पास रहने की आज्ञा दी है, तुम कल से उधर रहना (राघव से) चलो राघव, (वृक्षों की ओर देख कर) आओ मंडोवर कुमार!

दोनों का प्रस्थान, रणमल भी धीरे से उनके साथ आ मिलता है। भारमली की ओर कनखियों से देखता हुआ जाता है।

भारमली--(अपने आप) अच्छा तो राठौर! यह तुम्हारा षड्यन्त्र है, परन्तु तुम भारमली को बाँध न सकोगे। वह जाएगी, जहाँ कुमार जाएगा। आकाश मे, पाताल मे, जल में, थल में वह अपनी आत्मा को ही ढूँढेगी और तुम न पा सकोगे उसे राठौर!

तेजी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

— —

६

चित्तौड़ का राज प्रासाद

हंसाबाई और रणमल प्रवेश करते हैं।

हंसाबाई—इस देश मे भाई! मुझे तुम से बढ़ कर और किस का सहारा है? राणा राज-काज के कामो मे अधिक दिलचस्पी नहीं लेते। वे तो नाम के राणा हैं, वास्तव मे राज तो दोनो कुमार करते हैं।

रणमल—बहिन, मुझ पर विश्वास करो तो · ·

हंसाबाई—भाई पर विश्वास न करूँगी तो किस पर करूँगी। क्या हुआ यदि हम सौतेले बहिन भाई हैं। कहो क्या मैंने तुम से सदैव सगी बहिन का सा बर्ताव नहीं किया? क्या मैं तुम्हे कान्हा से अधिक नहीं समझती रही? तुम्हारे मंडोवर छोड़ने पर आठ-आठ आँसू नहीं रोई?

रणमल—(अत्यन्त विनम्रता से) तुम से बढ कर समस्त मंडोवर में मेरा कोई हितचिन्तक न था। मै जानता था, कि जब मै यहाँ प्रदेश मे निर्वासन के कष्ट सह रहा हूँ, मंडोवर के महलो मे भी माँ को छोड कर एक आत्मा है जो मेरे दुख मे दुखी है। वह आत्मा तुम्हारी ही तो थी बहिन। माँ के बाद यदि मैंने किसी का प्यार पाया है तो वह तुम्ही हो। मुझ से छोटी हो, किन्तु तुमने बड़ी बहिनो की भाँति मेरा ध्यान रखा है। मैंने भी क्या तुम्हारे हित के

विचार से समय पर सावधान नही कर दिया था ? कहो वहिन, क्या मैंने न लिखा था ?

हसाबाई—यह तो होना था, यह तो होना था। और जो हो चुका, उस पर मै क्या पछताऊँ ?

रणमल—हाँ, यह होना था, पिता जी न मानते तो चंड विवश करता, वह राजपूत है और मुझे उसके दृढ़ संकल्प से भय आता है। (उदासी से) यह तो होना ही था! पर इसी लिये मैने लिखा था कि शर्तें मनवा लेना। अब तो चंड असहाय, (खुश होकर) अब वह युवराज न होगा, कुछ ही महीनो की वात है मेरी वहिन का..

हंसाबाई—(रणमल के मुँह पर हाथ रख कर और मुस्करा कर) चुप रहो, चुप रहो। (गम्भीरता से) मै कहती थी कि यदि राज्य का सब प्रबन्ध चंड अथवा कुमार राघव के हाथ मे ही रहा तो मै जैसे रानी हुई, जैसे न हुई।

रणमल—यही तो मै भी कहता हूँ कि तुम जैसी रानी हुई, जैसे न हुई। मै भी यही सोचता हूँ पर क्या करूँ, मै तो यहाँ सेवक जैसा हूँ, मुझे जरा भी अधिकार होता तो मैं तुम्हे ...

हंसाबाई—तुम्हे अधिकार मिल जाएँगे, मेरा भाई मेरे ही राज्य मे अधिकार-हीन रहे, यह कैसे हो सकता है ?

रणमल—राघव की ओर से तुम निश्चिन्त रहो। चंड से अधिक प्रजा उसे मानती है, किन्तु मैंने एसी युक्ति लड़ाई है कि वह स्वयं

ही चित्तौड़ छोड़ देगा।

हंसाबाई--(उत्सुकता से) कैसे ?

रणमल--यह न पूछो, बस यह निश्चय समझो कि वह चला जाएगा और रहा युवराज (धीमे स्वर में) उसके प्रभाव को कम करने के लिये ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि राठौरों को सेना में उच्च पद मिल जाएँ, ताकि यदि युवराज चाहे भी तो हमारे विरुद्ध कुछ न कर सके।

हंसाबाई--तुम ठीक कहते हो, मै महाराणा से कहूँगी।

रणमल--और एक बात अत्यावश्यक है। भारमली को न जाने देना। राजनीति की शतरंज पर मैं उसे एक गोट बनाना चाहता हूँ।

हंसाबाई--महाराणा ने तो उसे मेरे पास भेजने को कहा था, मालूम होता है, अभी रानी जी का दिल उसे छोड़ने को नहीं चाहता। अच्छा आज देखूँगी। (रणमल से) भाई, तुम जाओ और मुझे अपने उन सैनिकों की सूची दो जिन्हें तुम किसी पद के योग्य समझते हो।

रणमल--जैसी तुम्हारी आज्ञा बहिन!

प्रस्थान

हंसाबाई--बाजी लगा रही हूँ युवराज, चाहे उलटी पड़े चाहे सीधी, तुम्हारा यह दम्भ, यह दर्प मुझ से देखा नहीं जाता, तुम मेरा हाथ झटक कर चले गए, किन्तु स्मरण रखना एक दिन तुम्हें उसी

हंसाबाई के सामने झुकना पड़ेगा, अथवा सब अधिकार त्याग कर चित्तौड़ को छोड देना होगा।

राणा लक्षसिंह का प्रवेश

हंसाबाई--(आगे बढ कर स्वागत करती हुई) आओ नाथ! आज आप का चेहरा उल्लसित है, क्या कोई अच्छा समाचार सुनने को मिलेगा?

लक्षसिंह—मेरे उल्लास और विषाद का आधार तुम्हीं तो हो, हंस! जब तुम्हारे मुख पर मुसकराहट खेलती है तो मेरा हृदय खिल उठता है और जब इस चाँद पर अवसाद के बादल छा जाते हैं तो मेरे दिल की दुनिया भी अँधेरी हो जाती है।

आकर बैठते हैं और अनिमेष दृगों से
हंसाबाई को देखते हैं।

हंसाबाई—आप मेरी ओर इस भाँति क्यों देख रहे हैं?

लक्षसिंह—मै इस अनुपम सौन्दर्य को निहार रहा हूँ। देख रहा हूँ वह हाथ कैसे होंगे जिन्होंने सुन्दरता की ऐसी प्रतिमा बनाई।

हंसाबाई—आप मुझे बनाया करते हैं।

लक्षसिंह—यह तुम कहती हो हंस?

हंसाबाई—(रूठने के भाव से) और क्या! यहाँ आए तो मेरी प्रशंसा कर दी। वहाँ गए तो उन की प्रशंसा के पुल बाँध दिए।

लक्षसिंह—हंस !

हंसाबाई—रहने दीजिये महाराज ! आप अपनी आत्मा को क्यों धोखा देते हैं। मैंने कभी आप से कहा कि बडी रानी के महलों मे न जाएँ। मुझे आप का प्रेम चाहिए, सब ओर बँट जाने के बाद जो शेष रह जाए वही सही, मै उसे पाकर भी अपने भाग्य को सराहूँगी।

लक्षसिंह—हंस ! (गला भरा हुआ है, उठ कर घूमते हैं।) मैंने तुम्हारे लिये राज-पाट, स्त्री, पुत्र, सब कुछ भुला दिया।

हंसाबाई—(व्यंग से) तभी तो आपको अपने वायदे याद नहीं रहते।

लक्षसिंह—कौन से वायदे ?

हंसाबाई—जो रोज किए जाते हैं और रोज भुला दिए जाते हैं।

लक्षसिंह—कोई बताओ तो सही ?

हंसाबाई—आप ने कहा था तुम्हारी तबीयत उदास है, भारमली को भेज दूँगा—आई भारमली ?

लक्षसिंह—(चौंक कर क्रोध से) हैं ! भारमली नहीं आई ? सच जानना हंस, मैंने तीन बार कहला कर भेजा है, और कल युवराज से भी कहा, वह क्यों नहीं आई—दासी !

दासी का प्रवेश

लक्षसिंह—भारमली को बुला लाओ।

दासी का प्रस्थान

--और कहो प्रिये, चाहे भारमली को वडी रानी ने स्वयं रखा है, किन्तु यह कैसे हो सकता है कि तुम कोई इच्छा करो और वह पूरी न हो।

फिर बैठ जाते हैं, हंसा उनके कन्धे पर
सिर रखती है, मुसकराती है।

हंसाबाई—और रणमल ?

लक्षसिंह—रणमल क्या ?

हसाबाई—मेरा भाई, मेरे ही राज्य मे एक दास का सा जीवन बिता रहा है।

लक्षसिंह—क्या कहा दास ! मंडोवर कुमार तो सरदार है, इस समय भी वीस सहस्र सैनिक उसके अधीन हैं।

हसाबाई—मेरा भाई केवल वीस सहस्र सिपाहियो का नायक ?

लक्षसिंह—तो कहो प्रिये, तुम अपने भाई के लिये कौन सा पद चाहती हो ?

हंसाबाई—मै उसके लिये मन्त्री का पद चाहती हूँ।

लक्षसिंह—कल से वह राज्य के मन्त्री होंगे।

हंसाबाई—सेना पर किस का अधिकार होगा ?

लक्षसिंह—सेनापति का !

हंसाबाई—तो महाराज उन्हे सेनापति वना दीजिये।

लक्षसिंह—चाहे इस समय सेना कुमार चंड के हाथ मे

है पर तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।

दासी का प्रवेश

दासी—(राणा से) कुमार राघव एक विशेष प्रयोजन से आप को मिलना चाहते हैं।

लक्षसिंह—चलो मैं आया, (हंसाबाई से) हंस! तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारा भाई शीघ्र ही सेनापति होगा।

हंसाबाई—(मुसकराती है।)

लक्षसिंह—मात्र मुसकराहट (हँसते है।) खैर, तुम मुसकराई तो हो, यही क्या कम है?

प्रस्थान

रानी दासी को बुलाती है। दासी का प्रवेश

हंसाबाई—(दासी से) भारमली नहीं आई?

दासी—रानी जी, वह तो कब की प्रतीक्षा कर रही है।

हंसाबाई—बुला लाओ!

दासी जाती है और भारमली को बुला लाती है।

भारमली अभिवादन करती है।

हंसाबाई—तो तुम भारमली हो? जिस के गानों की मैं ने इतनी प्रशंसा सुनी है।

भारमली—दासी उपस्थित है।

हंसाबाई—भारमली! तुम्हारी प्रशंसा बहुत देर से सुन रही हूँ, आज कुछ सुनने को जी चाहता है, इसी लिए तुम्हें बुलाया है।

कोई मीठा मादक गीत गाओ जिस से मन को शान्ति मिले, सुख मिले ।

भारमली—आज रानी जी, जी उदास है ।

हंसाबाई—(क्रोध से) जी उदास है ! क्या मेरे यहाँ आते ही तुम्हारे जी पर उदासी छा गई ? वहाँ दिन रात गाते तुम्हारी तबीयत उदास नहीं होती ? भारमली, मैं यह न सहन कर सकूँगी । तुम्हें गाना होगा ।

भारमली—रानी जी गा दूँगी, किन्तु गाने का सम्बन्ध तो दिल से है । जब वह ही स्वस्थ नहीं, तो गाना क्या आनन्द देगा ? जिस सितार के तार ही अस्त-व्यस्त हों, उस से स्वर क्या निकलेगा ?

हंसाबाई—अच्छा न गाओ ! मैं समझ गई । किन्तु भारमली यदि तुम मेरे महलों में न गाओगी तो वहाँ भी न गा सकोगी ।

पट-परिवर्तन

७

एक पहाड़ी पगडण्डी

घोड़े की रास थामे राघवदेव प्रवेश करते हैं।

पीछे पीछे उनका सेवक हरिसिंह आता है।

राघव—अत्यन्त दुर्गम मार्ग है हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज ! अत्यन्त दुर्गम !

राघव —घोड़े पर चलना बिलकुल असम्भव है।

हरिसिंह—महाराज ! कुछ देर यहीं विश्राम कीजिए, फिर, यह सामने जो चढ़ाई है, इसे हम पार कर लेंगे। हमारे साथी भी इतने में पहुँच जाएँगे, बस उन के साथ हम खेलवाड़ा जा पहुँचेंगे, इसके आगे तो बिलकुल सीधा रास्ता है।

राघव—हरिसिंह !

हरिसिंह—हाँ महाराज !

राघव—चित्तौड़ बहुत दूर रह गया ?

हरिसिंह—बहुत दूर महाराज !

राघव—(दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं।)

हरिसिंह—क्यों महाराज, दीर्घ निश्वास क्यों ?

राघव—मुझे यह जागीर पाकर खुशी नहीं हुई। यह मेरा उत्थान नहीं, हरिसिंह ! यह मेरा पतन है। मैं युवराज की दृष्टि में गिर गया, स्वयं अपनी दृष्टि मे गिर गया।

हरिसिंह—आप थक गए हैं महाराज, आप आराम कीजिए।

राघव—हरिसिंह ! मै चित्तौड को छोडना न चाहता था। चित्तौड़ की गली गली मे मेरी आत्मा बसती है, चित्तौड का प्रत्येक प्राणी मेरा बन्धु है और चित्तौड़ के पहाड, सरोवर, उपवन—ओह ! हरिसिह मैं चित्तौड़ से आना न चाहता था। मै ऐसे हूँ, जैसे निर्वासित कर दिया गया हूँ, ऐसे हूँ, जैसे निकाल दिया गया हूँ।

हरिसिंह—महाराज, आपने स्वयं जागीर माँगी, स्वयं चित्तौड को छोड़ने की अभिलाषा प्रकट की।

राघव—हाँ, मैने स्वयं ही जागीर माँगी, स्वयं ही·····(जैसे अपने से) किन्तु मै क्या करता ? मै गिरता जा रहा था, मैं गिरता जा रहा था, अपने चरित्र से गिरता जा रहा था और यह तो पश्चात्ताप है······(हरिसिंह की ओर मुड कर) चलो हरिसिंह ! विश्राम नहीं, मैंने विश्राम नहीं लिया, चलता ही रहा हूँ, तो अब विश्राम क्यो—(फिर अपने आप धीरे-धीरे) पुरानी स्मृतियों को भूल जाऊँ, मोह को छोड़ दूँ। अब नए स्थान पर नया संसार बसाऊँगा, नई दुनिया का सृजन करूँगा—किन्तु कर भी सकूँगा ? मेरी स्फूर्ति तो जैसे पीछे रह गई है, मेरी शक्ति तो जैसे पीछे रह गई है !

घोड़े को पुचकारते हैं, उसकी पीठ पर हाथ फेरते हैं।

फिर रास थामे आगे बढते है।

हरिसिंह पीछे पीछे जाता है।

पटाक्षेप

चतुर्थ अंक

१

चित्तौड़ की एक वाटिका।

मालिन और माली।

परदा उठने से पहले मालिन के गाने का स्वर सुनाई देता है।

गाओ रे मन मंगल-गान

मंगल-गान

तेरे घर कान्हा जन्मा है

रानी खुशियाँ मान

गाओ रे मन मंगल गान

मंगल-गान

परदा धीरे धीरे उठता है, मालिन बैठी हार गूँथ रही है और माली फूल इकट्ठे कर रहा है। मालिन हार गूँथती और गाती भी जाती है।

राजा खोल खज़ाने अपने

कर जी भर कर दान

गाओ रे मन मंगल-गान

मंगल-गान

मालिन सुई धागा रख देती है

गूँथे हुए हार को अन्यमनस्कता से फेंकती है।

मालिन—अब यह मुझ से नही होता, यह सब मुझ से नही होता।

माली—(फेंके हुए हार को टोकरे मे सजाता हुआ) हो सकेगा, सब कुछ हो सकेगा, मेरी रानी! दिल जरा कड़ा कर लो, सोच लो साल-भर के पैसे आज निकल आएँगे।

मालिन—ओह! मै थक गई हूँ, मेरी अंगुलियाँ दुखने लगी हैं, मेरी आँखें दुखने लगी हैं।

माली—फिर आराम होगा, आज के बाद मेरी रानी! देखो मेरे हाथ—जल्दी के कारण इन में कितने काँटे चुभ गए हैं, कितनी जगह से रक्त वह निकला है? किन्तु छलनी भी हो जाएँ तो भी मैं फूल लाता रहूँगा।

मालिन—बैठे बैठे मेरी कमर दुखने लगी है। मेरी भुजाएँ ऐंठ गई हैं और यह समाप्त होने मे ही नही आते, यह फूल, मैं जितना गूँथती हूँ, तुम उतने और ला देते हो।

माली—यह कुछ नहीं, यह कुछ नही, अम्बार भी लगा दूँ तो बहुत नहीं, आज दुगना मोल मिलेगा, देखने तक को हार न मिलेगे।

मालिन—दुगना मोल मिलेगा?

माली—आज खुशियाँ मनाई जा रही हैं, आज उद्यानों मे फूल खतम हो गए हैं, आज मुँह माँगे दाम मिलेंगे।

मालिन—दुगने तिगुने?

माली—हाँ दुगने, तिगुने, जितने चाहेंगे! आज कुमार का जन्म हुआ है, मेवाड के भावी सम्राट् का जन्म हुआ है।

मालिन फिर हार गूँथती है।

मालिन—मेवाड़ के भावी सम्राट् का ?

माली—हाँ! और सब मन्दिरो मे पूजा होगी, समस्त नगर के मन्दिरो मे!

मालिन—युवराज चंड अब राज्य न करेगे ?

माली—नहीं वह अधिकार छोड़ चुके हैं।

मालिन—तो छोटी रानी का पुत्र ही मेवाड का भावी अधिपति होगा।

माली—हाँ, यही जो आज जन्मा है। प्रसन्नता और उदासी के मिले-जुले भावों के साथ आज मन्दिरो मे पूजा होगी।

मालिन—उदासी ?

माली—युवराज अब युवराज न रहेंगे, हमारे वीर, साहसी प्रजावत्सल युवराज!

मालिन—और प्रसन्नता ?

माली—आखिर जन्म तो मेवाड के भावी राणा ही का हुआ है, फिर खुशी क्यो न होगी ? आधी रात तक मन्दिरों में पूजा होती रहेगी, आधी रात तक!

मालिन—आधी रात तक ?

माली—हाँ और दीपमाला भी होगी। सब बाजारों मे,

सब जहाँ तहाँ उभरे पत्थरों पर बैठ जाते हैं।

रणमल—(बाघसिंह से) बाघसिंह जाओ, कन्दरा का द्वार बन्द कर आओ और सैनिकों से कह दो कि वे सावधान रहें।

बाघसिंह का प्रस्थान

– आज आप लोगों की कृपा से मेवाड़ की अधिकाँश सेना पर राठोरों का अधिकार है, समय आने पर राठोर सिसोदिया वंश का जुआ उतार कर अधीनता के बन्धन तोड़ देंगे और सदैव के लिये मेवाड़ पर अपना आधिपत्य जमा लेंगे।

एक—हम बेचैनी से उस दिन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

दूसरा—वह दिन समीप आ रहा है, केवल आप लोग कटिबद्ध हो जाएँ तो दिनों में ही वह सब कुछ हो जाएगा, जो आज तक नहीं हुआ।

सब—हम सब प्रस्तुत हैं, सेनापति के इंगित पर अपना सर्वस्व बलिदान करने को तैयार हैं।

रणमल—मैं अनुगृहीत हूँ। आप लोगों के बल पर ही मैं इस बड़े काम का बीड़ा उठा रहा हूँ। आप लोगों ने सुखमें, दुख में, सर्दी गर्मी में, मेरा साथ दिया है। आप लोगों से मुझे बड़ी आशाएँ हैं। मेवाड़ के राज्य की कुंजी, इस समय हमारे हाथ में है। बड़े बड़े पदों पर राठोर नियुक्त हैं। अब तो केवल अवसर की देर है और फिर आप लोगों के साहस......

सब—हमारे साहस का पता अवसर ही देगा।

रणमल—मुझे मालूम है। राठौरो की तलवार का पानी चमक मे किसी से भी कम नही। मित्रो, मंडोवर से भी अच्छी सूचनाएँ नही आ रहीं। पिता जी मरण-शय्या पर पड़े हैं। निर्वासित मैं उनके जीवन-काल मे उनकी आज्ञा के बिना मंडोवर में पाँव नही रख सकता और वह मुझे बुलाने क्यो लगे, छोटी माँ बुलाने ही कब देगी ?

पहला—वह तो कान्हा को सिंहासन पर बिठाएँगी।

दूसरा—कान्हा को, जो अभी माँ की गोदी से अलग होने पर रो उठता है!

तीसरा—जो तोतली जबान के सहारे जीता है!

चौथा—पाँच वर्ष का दुर्बल और तेज-हीन बालक!

रणमल—छोटी रानी की ऐसी ही इच्छा है। पिता जी ने उसे युवराज भी तो घोषित कर दिया है।

पहला—मात्र युवराज घोषित कर देने से वह युवराज न हो जायगा। राजमुकुट तो जनता की धरोहर है। यह तो वीरो का गहना है—एक निस्तेज दीन-हीन बालक का खिलौना नहीं। आपको मंडोवर का सिंहासन विरोधियो के हाथों में न जाने देना चाहिए। अपने अधिकार की रक्षा करनी चाहिए।

रणमल—किन्तु पिता जी ने ....

पहला—महारावल को क्या अधिकार है कि वे प्रजा की धरोहर दुर्बल हाथो मे दे दे। आप उनके ज्येष्ट पुत्र हैं, वीर हैं, साहसी है, सिंहासन के अधिकारी हैं, आपको मंडोवर की रक्षा करनी चाहिए।

रणमल—मै तो सेवक हूँ, मै तो आप लोगो का दास हूँ, राजा प्रजा का सेवक होता है।

सब—आप हमारे राजा हैं, हमारे सिर के ताज हैं।

रणमल—मै तो सेवक हूँ। मुझे आप जैसे कहेंगे, करूँगा।

पहला—मंडोवर का राज्य आपको अपने हाथ मे लेना होगा, उसकी सुव्यवस्था करनी होगी।

रणमल—आपकी जैसी इच्छा होगी, मै करूँगा।

दूसरा—जरूरत पडी तो आपको मंडोवर पर आक्रमण करके रानी को अधिकार-हीन करना होगा, नही तो मंडोवर राठौरो के हाथ से छिन जाएगा।

तीसरा—स्त्री क्या और राज्य-प्रबन्ध क्या ?

रणमल—मैं आप के सद्भावो को जानता हूँ। आप को मुझ दीन से जो प्रेम है उस के लिये मै आभारी हूँ। मेवाड़ की समस्त सेना इस समय हमारे हाथ मे है। इस की सहायता से मंडोवर को हस्तगत कर लेना कोई कठिन काम नहीं।

पहला—हंसाबाई तो आपत्ति न करेगी ?

रणमल—हाँ हंसाबाई आपत्ति करेगी, किन्तु सब ठीक हो जाएगा, सब ठीक हो जाएगा। राणा लक्षसिंह गया के युद्ध पर जा रहे हैं.........

दूसरा—राणा लक्षसिंह जा रहे हैं ?

रणमल—हाँ। वे जाना चाहते हैं। वे दुर्बल होकर, बीमार होकर मरना नहीं चाहते। वे इस पवित्र काम के निमित्त रण-भूमि में वीर-गति को प्राप्त होना चाहते हैं। वे जाएँगे और उन के बाद मैं सब कुछ कर सकूँगा।

पहला—और कुमार चंड ?

रणमल—चंड ! उसे हट जाना होगा, उसे मेरे मार्ग से हट जाना होगा। उसे मेरी महत्त्वाकाक्षा की आग में भस्म हो जाना होगा। वह निर्वासित होगा, उसे निर्वासित कर दिय जाएगा।

सब अवाक् होकर उसके मुह की ओर देखते हैं।

पट-परिवर्तन

३

राणा लक्षसिंह और कुमार चंड

लक्षसिंह—नही चंड मै जाऊँगा, मैं वृद्ध हो गया हूँ। कौन जाने कब इस दुर्बल शरीर को मृत्यु का रोग लग जाए? मै ऐसा नही चाहता—तुम क्या ऐसा चाहते हो? क्या तुम चाहते हो, कि तुम्हारा पिता राजपूत होता हुआ, सिपाही होता हुआ, मेवाड़ का राणा होता हुआ, युद्ध-भूमि मे प्राण देने के बदले, बिस्तर पर तड़प-तड़प कर, एड़ियाँ रगड़-रगड कर जान दे?

चंड—किन्तु पिता जी……

लक्षसिंह—कहो बेटा, क्या तुम ऐसा चाहते हो? अपने पिता के लिये ऐसी दयनीय मृत्यु चाहते हो? मुझे तो पहले ही देर हो गई है। यह पाँच छः साल कुल की मर्यादा और अभिमान के अर्पण हो गए। किन्तु क्या इस से मैं अपनी प्रकृति को बदल सकूँगा।

चंड—नही पिता जी आप वीर हैं। मै आज गद्गद हो गया। मुझे ऐसे वीर पिता का पुत्र कहलाने मे गर्व अनुभव होता है।

लक्षसिंह—बेटा! मैंने तुम्हे आज इसी लिये बुलाया है।

मैं शीघ्र ही चला जाऊँगा, यह निश्चित है, ध्रुव है। तुम कहो मैं मोकल के नाम कौन सी जागीर लगा जाऊँ। बाद को झगड़ा न हो इस विचार से मैं अपने जाने से पहले यह सब कुछ ठीक कर जाना चाहता हूँ।

चंड—मोकल को जागीर, पिता जी? मोकल तो मेवाड के स्वामी होंगे और मैं तो उन का सेवक होऊँगा!

लक्षसिंह—तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो। वंश-परम्परा के अनुसार सिंहासन पर तुम्हारा ही अधिकार है। तुम मुझे सबसे प्रिय हो, राज-काज के कामों से दक्ष हो, मेरे बाद तुम ही राजा होगे। इसलिये कहो मैं उसे कौन सी जागीर दे जाऊँ? वह अभी बच्चा है। तुम्हारे ही ऊपर उसके पालन-पोषण का भार रहेगा।

चंड—किन्तु पिता जी, राज्य अब मैं न लूँगा। यह अटल है। वह तो मोकल का हो चुका। मैं तो अब मेवाड़ के भावी राणा का सेवक हूँ और सेवक के नाते जो काम आप मेरे जिम्मे लगाएँ वह मैं जी जान से करूँगा। भगवान एकलिंग के सन्मुख मैंने जो शपथ ली वह क्या यथेष्ट न थी जो आप यह पूछ रहे हैं। शपथ! मैं कहता हूँ, यदि मैं शपथ न भी लेता तो मेरा वचन ही काफी था। क्या मैंने भगवान राम के कुल में जन्म नहीं लिया, क्या आप भगवान राम के वंशज नहीं? क्या प्राण रहते हमारा वचन झूठा हो सकता है?

आप ने कहा था—तुम्हे सिहासन छोड़ना होगा और मैंने उसे छोड़ दिया। अब क्या आप अपनी बात टालेगे और क्या मैं उस मे सहायक होऊँगा? न ऐसा न होगा। मोकल ही राणा हो, मैं सेवक ही अच्छा।

लक्षसिंह—(चंड को छाती से लगाकर) चंड, वत्स, मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। अब मै चैन से जा सकूँगा और अपनी समस्त जाती हुई शक्तियो को इकट्ठा करके रण मे कूद पडूँगा। मुझे अब कोई चिन्ता नही। गया के निरीह और निर्बोध यात्रियों पर यवनो के अत्याचार बढ़ रहे हैं। मै इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकता। मै उस पवित्र भूमि को आततायिओ से पाक कर दूँगा और इस अन्तिम कर्तव्य से छुट्टी पा जाऊँगा।

चंड—मैं मोकल का पूरा-पूरा ध्यान रखूँगा। एक सेवक की भाँति राज्य की व्यवस्था करूँगा। किन्तु आप यवनों पर विजय प्राप्त करके आ जाएँगे।

लक्षसिंह—चंड! विजय मै चाहे प्राप्त कर लूँ, किन्तु आऊँगा नहीं, मै आने के लिये नही, जाने के लिये जा रहा हूँ। पहले मेवाड़ को आए दिन युद्ध का सामना करना पड़ता था और इसके वृद्धो को रणक्षेत्र मे अन्तिम नींद सोना दुर्लभ न था। उनकी अभिलाषा यहीं पूरी हो जाती थी और वे रणभूमि

में शत्रुओं के शवों की सोपान बना कर स्वर्ग-यात्रा करते थे परन्तु अब युद्ध बन्द हो चुके हैं, लड़ते-लड़ते, वीर-गति को प्राप्त करना दुर्लभ हो गया है। इस लिये मै गया के आतताथिओं पर चढाई करूँगा। मै आयु भर लड़ता रहा हूँ और लडते लडते प्राण देना चाहता हूँ। मोकल की रक्षा का भार तुम पर है।

चंड—मैं तैयार हूँ, जो आप की आज्ञा होगी वह मैं प्राणपण मे पालूँगा।

लक्षसिंह—वत्स! तुम ने जिस पितृ-भक्ति का सबूत दिया है, उसका उदाहरण ढूँढे से भी न मिलेगा। दुख यह है कि ऐसे पितृ-भक्त पुत्र का पिता मैं हुआ, जिस के कारण उस का अधिकार छिन गया।

चंड—अधिकार! आप क्षुब्ध न हों पिता जी, राजपूत का अधिकार उसकी तलवार है, वह, रहते दम, उस से कोई नहीं छीन सकता। रहा यह राज्य! सो पिता जी चंड आप के चरणों पर सदैव ऐसे सहस्रों राज्य निछावर कर सकता है।

लक्षसिंह—मैं तुम्हे क्या आशीष दूँ। मै तुम से बहुत प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारे लिये क्या करूँ? (सोचते हैं) अच्छा मैं यह आज्ञा देता हूँ कि आज के बाद मेवाड़ के महाराणाओं की ओर से जो परवाने और सनदें दी जाएँ उन पर भाले का चिन्ह

लिया, उसका गीत सुना और होश खो बैठे।

दूसरा—अब वह यहाँ आती है।

पहला—और अब आएगी, बार बार आएगी। वह इस जागीर की स्वामिनी होकर रहेगी।

दूसरा—यह असम्भव है। कुमार प्रजा-पालक और कर्तव्य-परायण हैं। एक गायिका के लिये वे प्रजा के हितों पर कुठार न चलाएँगे।

पहला—किन्तु उसने यों ही जादू नहीं किया, यों ही मन्त्र नहीं फूँका।

दूसरा—अरे छोडो, जादू वादू क्या? वह अद्वितीय गायिका है और अनुपम सुन्दरी! बस यही न? मैने तो सुना है, वह चित्तौड़ मे भी रही है। वहाँ से राजकुमार यहाँ आ गए तो वह भी आ गई। तुम कहते हो इसने कुमार पर जादू किया है। मैं कहता हूँ कुमार ने उस पर जादू किया है। हमारे कुमार सुन्दर और बलिष्ठ भी कितने हैं। समस्त मेवाड़ मे उन जैसा खूबसूरत कोई न होगा।

पहला—मैं नहीं मानता, जादू उसने ही किया है।

दूसरा—अरे कहाँ जादू?

पहला—तुमने देखा नहीं, तुमने सुना नहीं? (सामने देख कर) वह देखो, वह आ रही है।

दूसरा—(दूसरी ओर देख कर) और कुमार भी तो आ रहे हैं।

दोनों की जोडी कैसी सुन्दर है, जैसे काम और रति दो दिशाओं से मिलने के लिये आ रहे हैं। कुमार विवाह न करेंगे पर मैं तो कहूँगा दोनों बने एक दूसरे के लिये ही हैं।

दोनों जाकर चुस्ती से दरवाजों पर खड़े हो जाते हैं।

एक ओर से भारमली और दूसरी ओर से
कुमार राघवदेव का प्रवेश, भारमली
अभिवादन करती है।

राघवदेव—तुम फिर आ गई भारमली!

भारमली—मैं रुक न सकी कुमार?

राघवदेव—क्या कुछ और चाहती हो? भारमली, जो तुम ने कहा मैंने कर दिया। तुमने कहा, मैं खेलवाडा मे रहूँगी, मैंने अनुमति दे दी। भाई के साथ जो प्रण किया था, उसके अनुसार मुझे यह न करना चाहिए था। तुमने रंगशाला स्थापित करनी चाही मैंने आज्ञा दे दी। मैं वहाँ जाना न चाहता था, तुम्हारे अनुरोध पर कई बार वहाँ गया। वापस आता था, प्रण करता था, अब न जाऊँगा, किन्तु तुम्हारे आने पर फिर जाता था और वहाँ जाकर अपने आप को, अपनी प्रजा के हितों को, मन को भूल जाता था।

भारमली—(रुद्ध कंठ मे) कुमार! क्या मेरे चरणों कुछ क्षण आने से प्रजा के हितों की हानि हो जाती है?

लिया, उसका गीत सुना और होश खो बैठे।

दूसरा—अब वह यहाँ आती है।

पहला—और अब आएगी, बार बार आएगी। वह इस जागीर की स्वामिनी होकर रहेगी।

दूसरा—यह असम्भव है। कुमार प्रजा-पालक और कर्तव्य-परायण है। एक गायिका के लिये वे प्रजा के हितो पर कुठार न चलाएँगे।

पहला—किन्तु उसने यो ही जादू नहीं किया, यो ही मन्त्र नहीं फूँका ।

दूसरा—अरे छोड़ो, जादू वादू क्या? वह अद्वितीय गायिका है और अनुपम सुन्दरी! बस यही न? मैने तो सुना है, वह चित्तौड मे भी रही है। वहाँ से राजकुमार यहाँ आ गए तो वह भी आ गई। तुम कहते हो इसने कुमार पर जादू किया है। मैं कहता हूँ कुमार ने उस पर जादू किया है। हमारे कुमार सुन्दर और बलिष्ठ भी कितने हैं। समस्त मेवाड मे उन जैसा खूबसूरत कोई न होगा।

पहला—मैं नहीं मानता, जादू उसने ही किया है।

दूसरा—अरे कहाँ जादू ?

पहला—तुमने देखा नहीं, तुमने सुना नहीं? (सामने देख कर) वह देखो, वह आ रही है।

दूसरा—(दूसरी ओर देख कर) और कुमार भी तो आ रहे हैं।

दोनों की जोडी कैसी सुन्दर है, जैसे काम और रति दो दिशाओं से मिलने के लिये आ रहे हैं। कुमार विवाह न करेंगे पर मैं तो कहूँगा दोनों बने एक दूसरे के लिये ही हैं।

दोनों जाकर चुस्ती से दरवाजों पर खड़े हो जाते हैं।

एक ओर से भारमली और दूसरी ओर से
कुमार राघवदेव का प्रवेश, भारमली
अभिवादन करती है।

राघवदेव--तुम फिर आ गई भारमली !

भारमली—मैं रुक न सकी कुमार ?

राघवदेव—क्या कुछ और चाहती हो ? भारमली, जो तुम ने कहा मैंने कर दिया। तुमने कहा, मैं खेलवाडा मे रहूँगी, मैंने अनुमति दे दी। भाई के साथ जो प्रण किया था, उसके अनुसार मुझे यह न करना चाहिए था। तुमने रंगशाला स्थापित करनी चाही मैंने आज्ञा दे दी। मैं वहाँ जाना न चाहता था, तुम्हारे अनुरोध पर कई बार वहाँ गया। वापस आता था, प्रण करता था, अब न जाऊँगा, किन्तु तुम्हारे आने पर फिर जाता था और वहाँ जाकर अपने आप को, अपनी प्रजा के हितो को, सब को भूल जाता था।

भारमली—(रुद्ध कंठ से) कुमार ! क्या मेरे यहाँ कुछ क्षण आने से प्रजा के हितों की हानि हो जाती है ?

राघवदेव—हाँ, तुम नही समझती भारमली ! प्रजा के लिये जिन्होंने अपना जीवन दे दिया है। उनसे कैसी आशा रखी जाती है ? उन्हे कितना सतर्क रहना पड़ता है ? और मै तो अपना कर्तव्य भूलता जाता हूँ। तुम से मुझे डर लगता है भारमली, भय आता है।

भारमली –मै ऐसी ही डर की वस्तु हूँ कुमार, कोई सुनेगा तो हँसेगा ।

राघवदेव--मै डरता हूँ, मै वह जाऊँगा, मै भाई जैसा नही, मैं पत्थर नहीं, चट्टान नहीं भारमली ! तुम जाओ, खेलवाड़ा से चली जाओ, मेवाड़ से चली जाओ, दूर—बहुत दूर चली जाओ। तुम नहीं जानती, तुम्हे देख कर मुझे क्या होने लगता है। मैं अपने आप को भूल जाता हूँ, अपने कर्तव्य को भूल जाता हूँ, मै कुछ कर नहीं पाता, मै सोचता रहता हूँ।

भारमली—क्या सोचते रहते हो ?

राघवदेव—भारमली ! तुम जाओ मैं निर्बल हूँ, कमजोर हूँ, तुम जाओ !

भारमली—कहाँ जाऊँ कुमार, जाना चाहती हूँ, जा नहीं पाती और अब तो······अब तो ·····(आँखें भर आती हैं।)

राघवदेव—क्यों क्यो, क्या बात है भारमली ?

भारमली—मैं कहीं नहीं जा सकती, मैं कहीं नहीं जा सकती। (दोनों हाथों मे मुँह छिपा लेती है।)

राघवदेव--क्यों नही जा सकतीं ?

भारमली--मै डर गई हूॅ, मै तो आज कहने आई थी, मैं रंग-शाल मे नहीं रहूँगी। तुम मुझे अपने पास आश्रय दो, महलों मे आश्रय दो। मुझे डर लगता है, मुझे ....

राघवदेव--महलो मे ! नही भारमली, महलो मे नही, मुझे क्षमा करो। मेरी वर्षों की तपस्या पर पानी न फेरो। मुझे कुछ करने दो, खेलवाडा के लिये कुछ करने दो, मेवाड़ के लिये कुछ करने दो। तुम रहोगी तो मै कुछ न कर सकूँगा। देखो, आज घर घर मे मेरा नाम, किस श्रद्धा से, किस भक्ति से लिया जा रहा है। क्या तुम चाहती हो लोग मेरा नाम ले तो उनके चेहरो पर घृणा की रेखाएँ दौड जाएँ, उपेक्षा प्रतिबिम्बित हो जाए। न भारमली, ऐसा न करो।

भारमली—तो मै क्या करूँ कुमार, मै कहाँ जाऊँ, कैसे अपनी रक्षा करूँ ? (सिसकने लगती है।)

राघवदेव—(उसके समीप जाकर) भारमली, भारमली !

भारमली—(सिसकते हुए) मै पकड़ ली जाऊँगी, मैं महसूस करती हूँ—मेरी स्वतन्त्रता छीन ली जाएगी। मेरा पीछा किया जा रहा है। मैं अपनी छाया से डरती हूँ, अपने आप से डरती हूँ।

राघवदेव--(जोश से) तुम्हारा पीछा किया जा रहा है, तुम्हें पकड़ना चाहते हैं। कौन है जो तुम्हारा पीछा करता है ? कौन तुम्हे पकड़ना चाहता है ? नाम लो और मेरी तलवार उसके सीने से पार हो जाएगी। मेरे राज्य मे भय भी रह सकता है ?

भारमली--तुम जानते हो।

(सिर को कुमार के कंधे से लगा देती है।)

राघवदेव--नाम लो भारमली !

भारमली-- रणमल ।

राघवदेव--रणमल--राठोर का यह साहस, उस की यह स्पर्धा (तलवार पर हाथ जाता है।) कहो, वह यहाँ कब आया, कब उसने तुम्हारा पीछा किया ?

भारमली--तुम्हे चित्तौड़ के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं कुमार ! अब कुछ ही दिन मे वहाँ राठोरो का आधिपत्य हो जाएगा। सिसोदिया वंश के हाथ से अब वह निकल गया समझो।

राघवदेव--यह तुम क्या कहती हो ! कुमार चंड की उपस्थिति में, मेरी उपस्थिति मे यह हो सकता है क्या ?

भारमली--तुम कुछ न कर सकोगे कुमार ! मैं कहती हूँ, तुम देखते रह जाओगे; और मेवाड़ सिसोदियो के हाथ

से निकल जाएगा।

राघवदेव—कैसे भारमली ? यह तुम आज क्या कह रही हो ?

भारमली—और सुनो, स्वयं कुमार चंड ऐसा करने मे सहायक होंगे। तुम्हे ज्ञात नहीं, मैं वहाँ से भागी क्यो ? इधर महाराणा के समर-यात्रा करने के पश्चात् उन के आदेशानुसार कुमार चंड ने राज्य का सब भार अपने कंधो पर ले लिया है और इस कुशलता से उसका संचालन किया है कि समस्त मेवाड़ वासी मुग्ध हो गए हैं।

राघवदेव—फिर वहाँ राठौरो का आधिपत्य कैसे हो सकता है ? साफ-साफ कहो भारमली—पहेलियाँ न बुझाओ।

भारमली—इतना भी नही समझते। उनकी इस लोकप्रियता ने दूसरो के मन मे ईर्षा और द्वेप की आग सुलगा दी है और उनके शत्रु इस बात की ताक मे हैं कि उन्हे अपने मार्ग से हटा दिया जाए। वे षड्यन्त्र कर रहे हैं। रानी के कान भर रहे है।

राघवदेव—शत्रु कौन ?

भारमली—रणमल और दूसरे राठौर। हो सकता है वे उनकी हत्या कर दे।

राघवदेव—हत्या कर दे ! भारमली, मेरे रहते वे उनकी हत्या कर दे !! मैं संसार से राठौरो का अस्तित्व मिटा दूँगा।

को इस वृद्धावस्था में भी बीसियो आततायिओ को मृत्यु के घाट उतार कर वीर-गति को प्राप्त हुए।

राघवदेव—(रोते हुए) पिता जी, पिता जी, हमें छोड गए अन्धकार मे, आँधी मे, तूफान मे . ..

रुलाई आ जाती है, आँखों पर हाथ रखे
रोते और लड़खड़ाते हुए चले जाते हैं।

भारमली—अब कोई क्षण मे आँधी आएगी, कौन कौन से विटप गिरेंगे, कौन जाने ? अपनी रक्षा भी करनी होगी, यह गिरेंगे, तो तू भी गिरेगी।

तेजी से प्रस्थान

पट-परिवर्तन

५

हसावाई और कुमार चंड

चंड—यह तुम कहती हो माँ ?

हंसावाई—हाँ यह मै कहती हूँ !

चंड—मै स्वयं राज्य करना चाहता हूँ ?

हसावाई—करना क्या चाहते हो, कर रहे हो । राजा को क्या अधिकार प्राप्त होते है जो तुम्हे नहीं। प्रजा पर शासन तुम करते हो, न्याय-विचार तुम करते हो, सेना का प्रबन्ध तुम्हारे हाथ मे है। रणमल तो नाम का सेनापति है, होता वही है, जो तुम चाहते हो। फिर कहो राज्य कौन करता है ?

चंड—यह सब तो मै एक सेवक के रूप मे करता हूँ। पिता जी ने स्वयं मेरे कन्धो पर जो उत्तरदायित्व रखा, उसे मै निभा रहा हूँ। जब महाराणा मोकल बालिग़ हो जाएँगे, राज्य का सब भार उन्हे सौंप कर मै पृथक् हो जाऊँगा।

हसावाई—वह बालिग़ होने ही न पाएगा।

चंड—इससे तुम्हारा क्या तात्पर्य है माँ ?

हंसाबाई—जो तुम्हारे दिल मे है।

चंड—(उत्तेजित होकर) क्या कहा माँ, जो मेरे दिल मे है, मेरे दिल मे क्या है ? (ऊँचे) मेरे दिल मे क्या है ? मै तो एक सेवक

की भाँति सब काम कर रहा हूँ। राज्य ! यदि मै राज्य चाहता तो........ओह ! मै क्या कहने लगा था।

हंसाबाई--नही रुको नहीं, सब कुछ कह डालो तुम। मैं सब समझती हूँ, सब जानती हूँ।

चंड--क्या जानती हो, क्या समझती हो ?

हंसाबाई—मै जानती हूँ तुम ने इतनी प्रजा-वत्सलता, न्याय-प्रियता और नीति-कुशलता का ढोंग क्यो रचा है ? आज मेवाड़ मे न्याय-प्रिय कुमार चंड को सभी जानते हैं, राजमाता तथा महाराणा मोकल को कौन जानता है ? वे तो तुम्हारे हाथ की कठ-पुतली हैं, खिलौने मात्र हैं। चाहे जिधर घुमाओ चाहे जब तोड़ फोड़ डालो।

चंड—माता ! (गला भर आता है।) यह अभियोग ! इतना बड़ा अभियोग ! सँभाल लो अपना राज्य, सँभाल लो काँटो का यह ताज, यह विपत्तियो का भार ! तुम समझती हो मे दिन रात अपने आप की, अपने स्वास्थ्य की सुध-बुध भुला कर, सोते जागते शासन की व्यवस्था का ध्यान केवल इस लिये रखता हूँ कि मुझे अपना उल्लू सीधा करना है। मैं कुटिल हूँ, मेरे मन मे खोट है। अच्छा था, गरल का घूँट मुझे पिला देतीं, अच्छा था मेरा गला घोट देतीं, अच्छा था तीक्ष्ण कटार मेरे सीने मे भोक देतीं, पर यह अभियोग, ऐसा कड़ा अभियोग तो

न लगातीं। आज से मै सेवक का पद भी छोडता हूँ। आप अपना राज्य सँभालिए।

चलते हैं फिर मुडते है।

—एक वात कह जाऊँ मॉ, मुझे राज्य की लालसा नहीं अधिकार की भी आकांक्षा नही, किन्तु भूतपूर्व सेवक के नाते मै आपकी सेवा को तैयार रहूँगा। मै जानता हूँ अव आपको मेरी आवश्यकता नहीं. परन्तु जब कभी हो निःसंकोच बुला लीजिए। सेवक विलम्ब न करेगा।

प्रस्थान

रणमल का प्रवेश

रणमल—सब सुन रहा था, आपने ठीक ही किया।

हंसावाई—मैने ठीक किया ? कहो क्या यह सब ठीक हुआ ? (शून्य में देखते हुए) चंड ने अपने अधिकार छोड़ दिए !

रणमल—आप ने जिस नीति से काम लिया वह तो बड़े बड़े नीतिज्ञों को भी न सूझ पाती। मै होता तो इस भाँति, इस सुगमता से उन्हें राज्य छोडने के लिये उत्तेजित न कर सकता। मालूम होता है बहुत दुख हुआ।

हंसावाई—(उसी तरह देखते हुए) चंड ने सब अधिकार छोड़ दिए। मैने ऐसा नही सोचा था। अव शासन का प्रबन्ध कैसे होगा ?

रणमल—आप करेगी। आप राजमाता है। आप स्वयं महाराणा की ओर से शासन करे और आपकी सहायता को आप का यह सेवक उपस्थित है।

हंसाबाई—और क्या हो सकता है। मुझे तो तुम पर ही भरोसा है। इस प्रकार शासन का प्रबन्ध हो कि चंड की अनुपस्थिति जनता को न अखरे। ऐसा न हो कि जनता विद्रोह का झंडा खड़ा कर दे।

रणमल—जनता-जनता की स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर होती है बहिन। वह भूलना अधिक जानती है, आप देख लेंगी, कोई चंड को जानेगा भी नही। सब महाराणा और राजमाता के गुण गाएँगे।

हंसाबाई—तो जाओ घोषणा कर दो। कल से स्वयं राजमाता, राज-काज की देख भाल करेंगी।

रणमल—जो आज्ञा।

प्रस्थान

तेजी के साथ धाय का प्रवेश

धाय—छोटी बहू!

हंसाबाई—(चुप)

धाय—मै क्या सुनती हूँ, बड़ा कुँवर जा रहा है?

हंसाबाई—हाँ, वह अपनी इच्छा से जा रहे हैं।

धाय—अपनी इच्छा से जा रहे हैं या तूने उन्हे निकाल दिया है?

हंसाबाई—वह मोकल के स्थान पर स्वयं राणा होना चाहते थे।

धाय--(उत्तेजित होकर) छोटी बहू, यह तू कहती है, विवेक रखते हुए भी यह तू कहती है। चंड स्वयं राज्य चाहता है। यह बात कहने से पहले लज्जा और ग्लानि से तुम्हारा मुँह बन्द नही हो गया, आत्मा ने तुम्हे फटकार नही बताई, तुम्हारी जिह्वा ऐंठ नही गई। कुँवर राज्य चाहता, तो न ले सकता था ?

हंसाबाई—माँ !

धाय—आज जो तू मेवाड की राजमाता बनी बैठी है, यह किस की कृपा है ? चंड चाहता तो क्या राज्य ही न ले सकता था ? राणा राज्य दे रहे थे, उस ने न लिया। अपने प्रण पर अटल रहा। तुम सती होने लगी थीं, उस ने तुम्हे रोक दिया। नहीं तो आज, जहाँ बड़ी रानी चली गई है, वही तुम भी चली जाती। वह राज्य चाहता तो तुम्हे मरने देता। फिर उसे कौन अधिकार जमाने से रोक सकता था ? अधिकार जमाना कैसा ? अधिकार तो उस का ही था ! उस की सेवा का, उस के त्याग का तुम ने यह फल दिया। कहो अब उस के बाद शासन का काम कौन सँभालेगा ?

हंसाबाई—रणमल

धाय—अच्छा, यह आग उसी की लगाई है। यह कुचक्र उसी का चलाया हुआ है। तुम्हारी आँखे न हो छोटी बहू, तुम चाहे देख कर भी न देखो, किन्तु मै कहे देती हूँ, उसका मन साफ नहीं।

चंड जा रहा है, मैं कहती हूँ अब भी उसे मना लो। वह चला गया तो मोकल न रहेगा, हंसाबाई न रहेगी, सिसोदिया वंश न रहेगा '' '''खड़ी हो, हिलती नहीं। तुम न जाओ, मैं जाऊँगी। सिसोदिया वंश के हित के लिये जाऊँगी, महाराणा मोकल की रक्षा के निमित्त जाऊँगी और कुँवर को मना कर लाऊँगी।

तेजी से प्रस्थान

हंसाबाई—धाय क्या कह गई, रणमल धोखा देगा। वह हमें हटा कर स्वयं मेवाड का शासक बन जाएगा? क्या ऐसा हो सकता है? (शून्य में देखते हुए) क्या कृतघ्नता इतनी विनम्र, इतनी विनीत हो सकती है?

उद्विग्नता से घूमती है।

—किन्तु कुछ भी हो, राज्य रहे या जाए, अधिकार रहे या न रहे, चंड को मनाने न जाऊँगी, कभी भी न जाऊँगी।

सोचते-सोचते चली जाती है।

पट-परिवर्तन

६

दो नागरिक प्रवेश करते हैं।

पहला—चंड चले गए, और अपने साथ ही मेवाड़ का सुख और शान्ति भी ले गए।

दूसरा—सुना है, माँडू के सुलतान ने वड़े आदर से उनका स्वागत किया, उनके निवास के लिये विशाल भवन देकर उन्हे अपने दरबार मे एक उच्च-पद पर नियुक्त कर दिया।

पहला—वीरो को किस वात की कमी है? वे जहाँ भी जाएँ सम्मान उनके पाँव चूमता है। भाग्य तो मेवाड का खोटा है जिसके मुकुट से एक अमूल्य रत्न खो गया।

दूसरा—वह स्वयं कहाँ गए? उन्हे विवश कर दिया गया।

पहला—हाे, राजमाता ने उन्हे विवश कर दिया।

दूसरा—वह मेवाड़ के शत्रुओं के हाथ मे खेल रही है। वह नहीं जानती, उसने क्या कर दिया है, वह नहीं जानती वह क्या कर रही हैं। भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करें!

पहला—अब तो दरबार मे षड्यन्त्रो का राज्य है, नगर मे अत्याचारो का शासन है। कहो, अब किस की धन-सम्पत्ति

सुरक्षित है, किस की मान-प्रतिष्ठा सुरक्षित है ? अब कौन खुले किवाड़ गहरी नींद सो सकता है ? वह उत्साह, वह खुशी कहाँ है ? मेवाड़ पर भय का साम्राज्य है और समस्त प्रदेश इस भाँति सहम गया है जैसे बाज को उडते देख कर पक्षी सहम जाते हैं।

दूसरा—अरे वह देखो, सेनापति आ रहे हैं। शीघ्र चलो कहीं किसी और विपत्ति मे न फँस जाएँ।

दोनों जल्दी जल्दी चले जाते हैं।

रणमल अपने एक सैनिक के साथ आता है।

रणमल—अजित ! पिता जी को मरे आज तीसरा दिन है। हमे एक निमिष भी देर न करनी चाहिए।

अजित—हमारी सेनाएँ तैयार हैं, केवल आपके इशारे की देर है। राठौर सैनिक अपने युवराज को उसका अधिकार दिलाने के लिये मंडोवर पर टूट पड़ेंगे।

रणमल—और मेवाड़ की सेनाएँ।

अजित—सब राठौर सेनापतियों के अधीन हैं।

रणमल—कुमार चंड माँडू में हैं, सेनाओं पर अपना अधिकार है, महाराणा नाबालिग़ हैं, अब कौन है जो मेरे मार्ग की बाधा बन सकता है ? वह दिन शीघ्र आएगा जब मेवाड और मंडोवर एक राठौर-साम्राज्य के अधीन होंगे; और सिसोदियों का मन्त्र टूट जाएगा।

अजित—राघवदेव ?

रणमल—वह खेलवाड़ा मे है। इस से पहले कि उसे इन सब बातो की सूचना मिले उस का जीवन-दीप बुझा दिया जाएगा। अजित, हम किसी को भी न छोड़ेगे। शताब्दियो की इस दासता की बेड़ियाँ काट डालेंगे। सिसोदियो के बदले अब समस्त राजपूताने पर राठोरो का आधिपत्य होगा। इस बात के लिये मैने कितना प्रयत्न नही किया? कई रातें मैंने इसी सोच मे बिता दी हैं। प्रधान मन्त्री के होते हुए, दोनो कुमारों के होते हुए, सेनापति का स्थान सँभालना क्या आसान बात थी? राघवदेव को चित्तौड़ से बाहर कर देना क्या सुगम था और फिर चंड को अधिकार छोड़ कर मॉडू मे निर्वासितो का सा जीवन बिताने पर विवश करना क्या सरल था? किन्तु मैंने सब किया। और उस का यह फल है कि मेरे समस्त साथी उच्च पदो पर नियुक्त हैं। क्या मंडोवर मे ऐसा हो सकता था?

अजित—आप के साथी आप के इशारों पर अपने प्राण निछावर करने को तैयार हैं कुमार!

रणमल—कहो, हंसाबाई को सन्देह तो नहीं हुआ? मैंने बाघसिंह को नगर में यह अफ़वाह फैलाने को आज्ञा दी थी कि मेवाड़ पर यवन आक्रमण करना चाहते हैं। इस लिये सेना को लेकर स्वयं सेनापति सीमा पर जाएँगे।

अजित—नहीं राजमाता, को सन्देह नहीं हुआ। वह इसी भूल मे है कि यवनों के आक्रमण को रोकने की तैयारी हो रही है। यदि उसे ज्ञात हो जाए कि यह चढ़ाई उस के भाई के विरुद्ध की जा रही है तो वह न जाने क्या कर दे ?

रणमल—क्या करेगी ? वह चाहे भी, तो कुछ नहीं कर सकती। मेरे जाल मे वह इस तरह जकड़ी हुई है कि निकलना कठिन है, असम्भव है, (धीरे से) किन्तु मैं चाहता हूँ वह न जाने, मैं चाहता हूँ वह भूली रहे, अभी समय नहीं आया। तुम जाओ सेना को आज रात के पहले पहर ही यहाँ से चलने के लिये तैयार रहने का आदेश देदो।

अजित—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—सूरज छिप रहा है। धीरे-धीरे अस्ताचल की ओट मे जा रहा है और रात अपने भयानक अँधेरे को लिए हुए वढी आ रही है। किन्तु मुझे यह अँधेरा पसन्द है। इसी अँधेरे में मेरे कितने ही रहस्य छिपे हैं, कितने ही गुप्त भेद निहित हैं।

ढोल पीटने की ध्वनि आती है।

—शायद बाघसिंह इधर ही आ रहा है।

बाघसिंह और ढोल लिए हुए एक मुनादी करने वाले का प्रवेश

—कहो, नगर मे मुनादी करा दी ?

वाघसिंह—हाँ महाराज, समस्त नगर मे मुनादी करा दी है, कि मेवाड पर यवन आक्रमण करने की सोच रहे हैं। मेवाड़ वासियों को अपनी रक्षा के हित, अपनी धन सम्पत्ति की रक्षा के हित युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिए।

रणमल--ठीक है, ठीक है। (मुनादी वाले को एक मुद्रा देकर) जाओ, हम तुम से बहुत प्रसन्न हैं।

ढोल वाला जाता है।

—(बाघसिंह से) सुनो वाघसिंह ! मै आज सन्ध्या को सेना लेकर प्रस्थान करूँगा। तुम मेरे पश्चात् इस रहस्य को खुलने न देना। जब तक मै मंडोवर को जीत कर वापस मेवाड नहीं पहुँच जाता, तब तक किसी को यह मालूम न हो कि मैने किधर चढ़ाई की ?

वाघसिंह--क्या आप मंडोवर मे न रहेंगे ?

रणमल—नहीं, मुझे मंडोवर की मरु-भूमि से मेवाड़ की उर्वरा, हरियाली भूमि अधिक पसन्द है। मैं अपने साम्राज्य का केन्द्र चित्तौड ही को वनाऊँगा।

वाघसिंह—फिर मंडोवर पर चढ़ाई करने से क्या लाभ ?

रणमल—तुम नहीं जानते, जाओ जैसे मैं कहता हूँ वैसे ही करो।

वाघसिंह—जो आज्ञा।

प्रस्थान

नही दीखता, फिर भी बढ़ती जा रही हूँ। फिर भयानक आँधी आती है। विटप काँप उठते हैं, धरती डोल जाती है, आकाश रह-रह कर आग फेकता है। इस तूफान मे कुँवर का हाथ मेरे हाथ से छूट जाता है। मै चीखती हूँ। मे अँधेरे मे कुँवर के लिये चीखती हूँ।

दासी—भयंकर स्वप्न है! (सान्त्वना देते हुए) किन्तु, इसमे यथार्थता कुछ भी नही। हमारे कुँवर सौ वर्ष जिएँ। आज बाहर झक्कड़ चल रहा है और इसी लिये आपको ऐसा बुरा सपना आया है। आज प्रातः तो उनका राज्याभिषेक होगा।

रानी—मुझे राज्याभिषेक नहीं चाहिए। मै ऐसे ही भली, मेरा बच्चा मेरी गोदी मे बना रहे, मुझे और कुछ न चाहिए।

दासी—महारानी अधीर न हो। अभी कुछ घडियो के बाद समस्त मंडोवर मे खुशियाँ मनाई जाएँगी। उल्लास का नृत्य होगा। आप के कुँवर मँडोवर के राणा होंगे और आप राजमाता कहलाएँगी।

रानी—किन्तु यह भयानक काली रात, आँधी का यह अट्टहास, यह घन-गर्जन, यह प्रलय का शोर, मेरा हृदय धडक रहा है। तुम जाओ दासी! मन्त्री को बुला लाओ।

दासी—अभी रात काफ़ी है महारानी, और दिन भर आप व्यस्त रहेगी, इस लिये सो रहे।

रानी--वह दिन आएगा भी या नहीं! मुझे जैसे कोई खींचे लिए जा रहा है, खींचे लिए जा रहा है और कह रहा

है वह दिन न आएगा, वह दिन न आएगा। वह देखो, वडी रानी जैसे कहकहा लगा रही है, हँस रही है। कह रही है, अव मेरा समय है, अव मेरी वारी है !

दासी—वडी रानी—वह तो मर गई. सती हो गई।

रानी—हाँ, सती हो गई, न होना चाहती थी। वह सती होने से पहले अपने कुँवर को देख लेना चाहती थी, पर मैंने उसे सती होने पर विवश कर दिया। मैंने उसे मर जाने पर, अपनी अन्तिम अभिलाषा साथ लिए मृत्यु की गोद मे सो जाने पर विवश कर दिया और अव दिन रात मेरी आँखो के सामने उसका भयानक मुख, तनी हुई भृकुटी, लाल लाल आँखे घूमती रहती हैं। मे सुनती हूँ जैसे वह कहती है 'अव मेरी वारी है', 'अव मेरी वारी है'!

दासी—यह कुछ नही। आप का भ्रममात्र है, वाहर केवल आँधी चल रही है।

रानी—(शून्य में देखते हुए) आँधी चल रही है ?

दासी—हाँ, आँधी चल रही है।

रानी—मेरे हृदय मे भी आँधी चल रही है। एक भयानक तूफ़ान मचा हुआ है। सारी रात मुझे नींद नहीं आई। मैंने सुना है, हंसा ने अपने राज्य मे रणमल को ही सर्व-सर्वा वना दिया है। यह उसने अच्छा नही किया। जिस पौधे को मै कुचल कर फेंक देना चाहती थी, उसे ही उसने अपने स्नेह से सींचा है। किन्तु यह सॉप

है मै जानती हूँ। दूध पीकर भी काटेगा, डंक चलाएगा।

वायु के वेग से खिड़की का पट खुल जाता है, झिलमिला

कर दिया बुझ जाता है, एक दासी घबराई हुई

प्रवेश करती है।

दासी—(घबराई हुई आवाज में) महारानी भागिए! महारानी भागिए! सेनापति मारे गए, सेनापति मारे गए!

रानी—(आतंक से) सेनापति मारे गए?

दासी—हाँ नगर के द्वारो पर, गलियो मे, बाज़ारो मे सब जगह युद्ध हो रहा है।

रानी—विद्रोह हो गया है?

दासी—नही।

रानी—तो क्या हुआ है, कहो, जल्दी कहो?

दासी—कुँवर रणमल ने आक्रमण कर दिया है।

रानी—(दीर्घ निश्वास छोड़कर) मैंने सोचा था, मैं डरती थी। तो भागूँ, किधर भागूँ, हाथ पाँव फूल रहे है।

बाहर से शोर सुनाई देता है।

दासी—महारानी भागो! महारानी भागो! चलो मै कुँवर को उठाती हूँ।

रानी—हाँ चलो, भागो, उस निर्दयी के हाथो से कुँवर की जान बचाने के लिये, मै भागूँगी जंगलो, पहाड़ो की ठोकरे खाऊँगी। चलो, भागो! न भाग सकी तो रणमल के हाथो उसके जीवन का

अन्त देखने से पहले मैं स्वयं अपने हाथों उसका गला घोंट दूँगी।

चली जाती है।

बाहर कोलाहल बढ़ रहा है।

रणमल हाथ में तलवार लिए प्रवेश करता है।

रणमल—अँधेरा है—शायद भाग गई, किन्तु भाग कर जाएगी कहाँ? अजित मशाल लाओ।

अजित मशाल लाता है, दूसरे सैनिक भी आ जाते हैं।

—कहाँ है अत्याचार की वह मूर्ति? मुझ को नालायक, निकम्मा, कायर और मूर्ख कहने वाली, अभिमानिनी, गर्विनी, छोटी माँ? आए और देखे इस मूर्ख के मस्तिष्क मे कितनी बुद्धि है, इस कायर की भुजाओं मे कितना बल है। कहाँ है उसका वह कुँवर, वह पाँच वर्ष का निर्बल तेजहीन बालक, जो आज मेरे स्थान पर मंडोवर का राव बन रहा था?

हाथों में बच्चे का शव लिए उन्मादिनी
की भाँति रानी का प्रवेश

रानी—लो यह है कुँवर! तुम्हारे हाथों इसे मरता देखने के बदले मैंने स्वयं इसे चिर-निद्रा मे सुला दिया है। तुमने भागने के सब द्वार बन्द कर दिए। तुम ने चाहा हमें वन्दी बनाओगे, जलील करोगे। तुम्हारी यह कामना पूरी न होगी। मैंने अपने हृदय के टुकड़े को अपने हाथों मसल डाला, अपनी आँखों की ज्योति को अपने हाथों नष्ट कर दिया, अपने घर के उजाले को स्वयं अन्धकार

मे परित्राण कर दिया—आज मैं माँ होकर भी डायन हो गई। देखो इसकी यह मुरझाई हुई सूरत, इसकी यह फटी-फटी आँखे, यह तुतलाने वाली बाहर को निकली हुई जिह्वा, यह निष्पन्द और निष्प्राण देह। मैने इसका गला घोट दिया। तुम जैसे पिशाच के हाथो देने के बदले मैने पिशाचिनी होना स्वीकार कर लिया। मेरा पुत्र बन्दी होता, दास बनता, अपमान की आग मे जलता। न, मुझे यह स्वीकार न था। वह मर गया, कुँवर होता हुआ मर गया, राणा होता हुआ मर गया, कुछ क्षण के लिये इसके प्राणो का मोह मेरे हृदय मे उठा था, मेरे दिल मे भय का संचार हुआ था, मै भागने को तैयार हो गई थी। किन्तु अब क्या डर है? मै स्वयं कुछ क्षण की मेहमान हूँ। मैने हीरे की कणी चाट ली है। विष मेरी नस नस मे दौड़ रहा है। इतनी दूर सेना लेकर एक निरीह, निर्बोध बालक को बाँधने चढ़ दौड़े थे, लो बाँध लो! बन्दी बना लो!!

बच्चे को उसके पाँवों पर पटक देती है।

और स्वयं अचेत होकर गिर पड़ती है।

सब स्तम्भित, अवाक्, स्तब्ध देखते रह जाते हैं।

पटाक्षेप

पञ्चम अंक

१

हंसाबाई और धाय

हंसाबाई—मै क्या करूँ? कुछ समझ मे नही आता। तुम्ही बताओ माँ, मै तो विवश हूँ, असहाय हूँ!

धाय—तुम ने, छोटी बहू, यह काँटे अपने हाथो बोए हैं।

हंसाबाई—जले पर नमक न छिड़को माँ! उत्थान मे किस की आँखें अन्धी नही हो जाती? किस के पर नही लग जाते, फिर मै तो साधारण स्त्री हूँ। मैने बुरा भी क्या किया? यदि बहिन अपने भाई के साथ—उस भाई के साथ जो सौतेला है, जिसे उस की माँ ने निकाल दिया है, प्यार करती है तो क्या बुरा करती है? यदि सौतेली बहिन, अपनी माँ के दुर्व्यवहार का पश्चात्ताप करती हुई, निर्वासित भाई से सद्व्यवहार करती है तो क्या बुरा करती है? उसे क्या मालूम कि वह विष-वृक्ष को अपने स्नेह से सीच रही है? उसे क्या मालूम कि वह आस्तीन मे साँप पाल रही है?

धाय—मैंने कहा था, मैने सावधान कर दिया था।

हसाबाई—किन्तु मैंने सुना नही। उस समय मैं अन्धी थी, वहरी थी, मुझे अपने महारानी होने का गर्व था, अपने राजमाता होने का गर्व था। अब कहाँ है वह गर्व? परिस्थितियो ने उसे पीस कर रख दिया है और मै असहाय, लाचार, वेवस तुम्हारे सामने खड़ी हूँ। महाराणा परलोक सिधार गए और कुँवर! उसकी जान का भय दिन रात बना रहता है। कौन शत्रु है कौन मित्र है? समझ मे नही आता। अपने पराए बन बैठे हैं। माँ, बताओ, सुझाओ, कहो, मै क्या करूँ? कैसे मेवाड़ के इस रत्न की, सिसोदिया वंश के इस दीपक की रक्षा करूँ? यह न रहा तो अँधेरा हो जाएगा, तारीकी छा जाएगी। मुझे दंड दो, किन्तु इसे बचाओ इसकी रक्षा करो।

धाय के पावों पर झुकती है।

धाय—(उठा कर छाती से लगाती हुई) छोटी बहू, यह क्या? क्या मेवाड़ की राजमाता, आज इतनी असहाय, इतनी दीन हो गई कि एक धाय के आगे, एक साधारण धाय के आगे झुकने को तैयार है। (गला भर जाता है।) उठो मेरी बहू, मेरी छोटी बहू, मेरे जीते जी तुम्हे कोई हानि न पहुँचा सकेगा, महाराणा मोकल का वाल वाँका न कर सकेगा। मैं कवच बन कर उस की रक्षा करूँगी, मै ढाल बन कर शत्रुओ के प्रहारो को रोकूँगी।

हंसाबाई—(रोते हुए) मै तुम्हारी कृतज्ञ हूँ। माँ मेरा कोई

नहीं। माँ नही, बाप नही, भाई नही, स्वामी नहीं, ले देकर एक यही बच्चा है। कौन जाने वह—निर्दयी वह—जिसके आतंक से मंडोवर और मेवाड़ के वनो में पक्षी तक अपने घोंसलो मे छिप जाते हैं, कब मेरा अथवा मेरे बच्चे का जीवन-दीप बुझा दे? मै तुम से प्रार्थना करती हूँ, कोई युक्ति बताओ, जिससे हम इस महल से, इस राज्य से निकल भागे और तब तक कही छिपे रहे जब तक कुँवर बालिग़ न हो जाए, अपना अधिकार लेने के योग्य नहीं हो जाता।

धाय—तुम भाग न सकोगी बहू! भले ही तुम राजमाता हो और कुँवर महाराणा हैं, किन्तु वास्तव मे तुम दोनो बन्दी हो। तुम्हारे हर काम की देख रेख होती है।

हंसाबाई—तुम सत्य कहती हो माँ! (अपने आप से) मै रानी हूँ, मेवाड़ के शासक की माँ हूँ!

वाटिका से मालिन के गाने की आवाज आती है।

आ कोयल हम मिल जुल गाएँ
गाएँ सुख के गान
पत्ता-पत्ता नाच रहा है
नाच रहे हैं प्राण

—गा, फूलो की दुनिया मे विचरने वाली स्वतन्त्र मालिन, गा। खुश हो कि तू रानी नही, मेवाड़ के शासक की माँ नहीं। तेरे पाँवो में अधिकार की बेड़ियाँ नही।

उद्विग्नता से घूमती है।

धाय—बहू ! तुम उसे क्यो नहीं लिखती ! एक बार लिख दो, वह सिर के बल दौड़ा आएगा। वह महाराणा की रक्षा करेगा, तुम्हारी रक्षा करेगा !

हंसाबाई—मैं कैसे लिखूँ, मैंने स्वयं अपना मार्ग रोक दिया है, स्वयं अपने पाँवो पर कुठार चलाया है।

धाय—यह सब भूल जाओ बहू ! तुम लिखो। चार पंक्तियाँ लिखो। पहुँचाने का प्रबन्ध मै कर दूँगी।

हंसाबाई—यदि वह न आए ?

धाय—न आए, तुमने चंड को समझा ही नहीं। वह आएगा, अपने कर्तव्य की जंजीरो मे बँधा, वह आएगा। मैं तो सोचती हूँ वह अब तक क्यो नही आया ? संकोच के मारे बैठ रहा होगा, वह आने को तैयार होगा, नहीं तो अपने भाई को, मेवाड़ के महाराणा को इस सकट मे देख कर भी स्वामि-भक्त वह बैठा न रहता। तुम लिखो, पढ़ते ही अपने सहायको के साथ चला आएगा

हंसाबाई—लिखूँ भी तो वह एक दिन मे थोड़े ही आ सकेगे। फिर इतने दिन क्या किया जाए। मोकल को कहाँ छिपाया जाए। अब वह सिंहासन पर रणमल के पास बैठता है, उसकी गोदी मे बैठता है। किस तरह उसे मैं छिपा लूँ, उसके पास जाने से रोक दूँ ?

धाय— बीमारी का बहाना कर दो और जब तक चंड की ओर से कोई उत्तर नहीं आता तब तक उसे बाहर न निकालो । मैं इस का प्रबन्ध कर दूँगी ।

हंसाबाई—तुम ने देखा नहीं, रणमल की नीयत साफ़ नही। वह जब भी मोकल की ओर देखता है, उसकी दृष्टि उसके मुकुट पर जम जाती है। उसकी आँखो मे लालसा काँपा करती है। मै डर जाती हूँ।

धाय—मै जानती हूँ उसके मन में क्या है ?

हंसाबाई—उसने मेरे भाई और माँ की हत्या कर दी। और फिर बहाना बना दिया, कह दिया—मैं उनकी मृत्यु न चाहता था। मैं तो केवल उन्हे मिलने गया था किन्तु उन्होने शत्रु समझ कर मुझ पर आक्रमण कर दिया। मै उसकी बात को सत्य नही मानती । हाय ! उसे यहाँ क्या प्राप्त नहीं था ? क्यो न उस से अपने छोटे भाई का सुख देखा गया ? (आँखें भर आती हैं) उन बेबसो को उसने आत्म-हत्या करने पर विवश कर दिया। (निश्वास छोड़ती है।) मै उस पर प्रकट नही होने देती । मै अपने व्यवहार मे अन्तर नही आने देती, किन्तु माँ, तुम जानती हो मेरे हृदय मे कैसा बवंडर उठ रहा है, इस हत्यारे के प्रति मेरे हृदय मे उपेक्षा की कैसी आग जला करती है ?

धाय—विलम्ब न करो छोटी बहू, पत्र लिखो। मैं उसे

तत्काल पहुँचाने का प्रवन्ध कर दूँगी।

हंसाबाई—अच्छा लिख देखती हूँ। जब मनुष्य डूबने को होता है तो वह तिनके का भी आसरा ताकता है। (अपने आप) कुमार! अपना गर्व, अपना अभिमान, छोड कर मै तुम से रक्षा की भीख माँगती हूँ। चाहती थी, तुम्हारा दर्प चूर-चूर कर दूँगी। किन्तु तुम चट्टान की भाँति अटल खड़े हो और मेरा दर्प मिट्टी के खिलौने की तरह टूट चुका है।

हंसाबाई बैठ कर लिखती है।

धाय खड़ी देखती है।

पट-परिवर्तन

२

महलों का एक उद्यान

मोकल एक पहिया दौड़ाता आता है,
उसके पीछे पीछे बालक हैं। पहिया गिर
जाता है। बालक उस पर झुकते हैं।

पहला—अब बस करो, अब हमारी बारी है।

दूसरा—तुम्हारी कहाँ, हमारी बारी है। अब हम दौड़ेंगे।

तीसरा—जी! तुम दौडोगे, दो बार तो दौड़ चुके तुम, हम ने हाथ भी नही लगाया।

चौथा—हाँ हाथ नही लगाया! पहले पहल किसने बारी ली थी?

तीसरा—वह तो कुछ क्षण के लिये थी।

चौथा—चाहे कुछ हो, चलाया तो था, और हम ने हाथ लगा कर भी नही देखा।

पाँचवाँ—(सब को परे हटा कर) और हम, हम, अब के हमारी बारी है।

मोकल—तुम पहले निर्णय कर लो, इतने मे मै एक चक्कर लगा आऊँ।

पहिया चलाता हुआ भाग जाता है।
सब 'हमारी बारी है', 'हमारी बारी है'
कहते हुए उस के पीछे भागते हैं।

अजित के साथ रणमल का प्रवेश

रणमल—भारमली का कुछ पता आया ?

अजित--वह खेलवाडा मे है।

रणमल—यह तो बहुत पहले की बात है। मैने उसे पकड लाने के लिये जो आदमी भेजे थे, उनकी कोई खबर आई ? तुम्हे मालूम नही अजित, भारमली कैसे षड्यन्त्र खड़े कर सकती है ? उसका स्वतन्त्र रहना राठौरो के आधिपत्य के लिये कितना हानिकारक है।

अजित—अन्तिम सूचना जो मिली है, उससे यह पता चला है कि वह कुमार राघव के पास चली गई है और उन के ही आश्रय मे खेलवाडा के दुर्ग मे रहती है।

रणमल—राघव के आश्रय मे चली गई ? भारमली ! मैं देखूँगा तू मुझ से कहाँ भाग सकती है, कब तक भाग सकती है ? तू संसार के किसी कोने मे चली जा, मेरे प्रयत्नो का जाल तुम्हे वहाॅ से भी बाँध कर ले आएगा। राघव के पास—यदि राघव न रहा तो कहाँ जाएगी। अजित !

अजित—महाराज !

रणमल—बाँस को ही काट दो।

अजित—समझा नहीं महाराज !

रणमल—न बाँस रहेगा, न बाॅसुरी बजेगी (उसके कान में कुछ कहता है।) तुम सैनिको के साथ भेस बदल कर नगर में

छिप जाना और फिर तत्काल दुर्ग पर अधिकार करके भारमली को गिरफ़तार कर लाना।

अजित—सुना है, राघव माँडू गए हैं। कोई षड्यन्त्र करना चाहते हैं।

रणमल—ज्यो ही वहाँ से खेलवाडा पहुँचे, पोशाक पहुँचा देना और उन दोनो को साथ भेज देना।

अजित—ऐसा ही होगा। किन्तु पोशाक क्या कह कर भेजी जाए।

रणमल—बहाना बना देना। महाराणा मोकल के जन्म दिन की खुशी मे भेजी गई है।

अजित—जो आज्ञा।

प्रस्थान

रणमल—(आकाश की ओर) राघव! राघव! तुझे दंड भोगना होगा, मेरे और भारमली के बीच कूदने का दंड भोगना होगा, मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र करने का दंड भोगना होगा। षड्यन्त्र! मै षड्यन्त्रों से नहीं डरता। इन से पहले कि तेरे मस्तिष्क मे उन का कोई रूप बने तेरा मस्तिष्क ही न रहेगा, तेरा अस्तित्व ही न रहेगा।

पहिया दौड़ाते हुए मोकल का प्रवेश
पीछे अन्य बालक भागते आते हैं,
नेपथ्य के पास जाकर पहिया गिर पड़ता है।
लड़के उस से पहिया छीनते है, वह नहीं देता।

मोकल—(नेपथ्य से) मामा, मामा !

रणमल धीरे-धीरे जाते हैं

धाय प्रवेश करती है।

धाय—छाया की भाँति मैं तुम्हारा पीछा करूँगी, नियति की तरह तुम्हारे सिर पर मँडराऊँगी। रणमल! तू लालसा की आँखो से मोकल को देखता है, तेरी आँखो में हिंसा है, किन्तु आज के बाद तू मोकल की छाया को भी न पा सकेगा।

नेपथ्य में—मेरा मुकुट दे दो, मेरा मुकुट दे दो।

धाय—(नेपथ्य की ओर देखती हुई) ऐ! तूने मेवाड़ का राज-मुकुट अपने सिर पर रख लिया। तुम्हारा यह साहस, तुम्हारी इतनी स्पर्द्धा! राजवंश दुर्बल है इसी लिये न, किन्तु जैसे तूने षड्यन्त्र से यह सत्ता प्राप्त की है उसी तरह यह तुम से छीन ली जायगी। (दासियों से) तुम वहाँ जाकर छिप रहो, मैं अवसर मिलते ही मोकल को लेकर भागूँगी, ठोकर खाकर गिर पड़ूँगी और तुम मोकल को लेकर महलों मे भाग जाना। राठौर की नीयत कुछ अच्छी मालूम नहीं होती। वह देखो, वे सब इधर ही आ रहे हैं, इस लिये छिप जाओ।

सब छिप जाती हैं।

रणमल मोकल का ताज सिर पर रखे प्रवेश करता है।

पीछे पीछे मचलता हुआ मोकल आता है।

मोकल—मेरा मुकुट दे दो मामा, मेरा मुकुट दे दो।

रणमल—तुम खेल रहे हो, यह मुकुट गिर जाएगा, खराब हो जाएगा।

मोकल—(मचलता है।) मेरा मुकुट !

रणमल—(धीरे-धीरे, जैसे अपने आप से) आज कुछ क्षण के लिये मेवाड का मुकुट अपने सिर पर रखने की लालसा इतनी प्रबल क्यो हो उठी ? इसे किसी समय भी लिया जा सकता है। चाहूँ तो अभी ले लूँ।

—आओ तुम मेरे पास आओ।

मोकल—नही, मै तुम्हारे पास नही आता।

रणमल—तो मै मुकुट न दूँगा।

मोकल—मै तुम से लडूँगा।

रणमल—(मुसकराता हुआ) कैसे लड़ोगे ?

मोकल—तलवार से लडूँगा, सेना से लडूँगा, मेरा मुकुट दे दो।

रणमल—(भृकुटी तन जाती है।) इस नन्ही सी जान मे इतना गर्व, जिसे अभी अँगुलियों मे मसल सकता हूँ, इस छोटी सी जिह्वा मे इतनी तीक्ष्णता, जिसे अभी तालू से खींच सकता हूँ (हँसता है।) आओ मेरे पास आओ।

मोकल—(पीछे हटता है।)

रणमल—(इधर उधर देख कर) कोई नहीं, कोई नहीं। लड़के दूर खेल रहे हैं, सेवक उन के कौतुक देखने मे निमग्न हैं, माली अपनी झोपड़ी मे चला गया है। सूरज पर बादल छा गए हैं, आकाश की आँखे बन्द हो गई हैं (एक हिंस्र ज्वाला आँखों में चमक उठती है।) बढ़ कर मोकल को उठाता है।

मोकल—माँ, माँ ! (मचलता है, और चीखता है।)

धाय निकलती है।

धाय—क्या है बेटा, क्या बात है ?

रणमल धाय को देख कर मुसकराता है,

और मुकुट मोकल के सिर पर रख देता है।

रणमल—(खिसियाना होकर) लो लो, रोओ मत !

मोकल—माँ, माँ !

धाय उसे गोद मे उठा लेती है।

धाय—माँ, मै जाऊँगा, माता जी के पास जाऊँगा।

धाय—चलो मेरे लाल ! तुम्हारी माता प्रतीक्षा कर रही होगी।

मोकल को लेकर चली जाती है।

रणमल—फिर निकल गया, फिर अवसर निकल गया, किन्तु कब तक ? अन्त को एक दिन........

नेपथ्य में किसी के गिरने तथा चीत्कार का शब्द

धाय—(नेपथ्य से घबराई हुई आवाज़ में) कोई आइयो, कोई

दौडियो मोकल अचेत हो गए, महाराणा अचेत हो गए।

रणमल चौंकता है, धीरे धीरे जाता है।

रणमल—(नेपथ्य में) क्या हुआ, कहाँ है मोकल ?

धाय—(नेपथ्य में) उस को चोट आ गई। दासियाँ उसे महलो मे ले गई। राज वैद्य को बुलाओ।

रणमल—(नेपथ्य में) कैसे चोट आ गई ?

धाय—(नेपथ्य में) लिए जाती थी कि ठोकर खा कर गिर पड़ी। उस के चोट आ गई और अचेत हो गया। तुम बुलवाओ, राज-वैद्य को बुलवाओ।

रणमल तेजी के साथ प्रवेश करता है,
कुछ दूर चल कर रुकता है, नेपथ्य
की ओर देख कर ताली बजाता है।

—ओ, ओ।

भागते हुए एक सेवक का प्रवेश

—जाओ राज-वैद्य को बुला लाओ। कहो, शीघ्र आएँ महाराणा को चोट लग गई है।

सेवक का प्रवेश

—यह ठीक है, वैद्य द्वारा ही यह काम हो।

लँगड़ाती हुई धाय का प्रवेश

धाय—तुम जाओ, तुम स्वयं जाओ।

रणमल—(सोच कर) हाँ मुझे ही जाना चाहिए।

तेजी से प्रस्थान

धाय—अब तुझे उस की शक्ल भी दिखाई न देगी पिशाच! महाराणा महलों में सुरक्षित रहेंगे, कोई इन के पास न फटक पाएगा।

लँगड़ाते हुए प्रस्थान

पट-परिवर्तन

३

माडू में कुमार चंड का निवास स्थान

चंड और राघव बाते करते हुए प्रवेश करते हैं।

चंड—मै भी मनुष्य हूँ राघव, एक निर्बल मनुष्य! देवता नही मै॥

राघव—अधम, नीच और स्वार्थी लोगो से भाई, आप बहुत ऊँचे हैं किन्तु फिर भी आप को इस तरह चित्तौड़ छोड़ कर न चले आना था।

चंड—वही मैने कहा। मै मनुष्य हूँ। इतने बड़े अपमान के पश्चात् कोई देवता ही चित्तौड़ मे रह सकता था।

राघव—किन्तु भाई.........

चंड—मै तुम्हे क्या बताऊँ राघव, जब छोटी माँ ने मुझ पर वह अभियोग लगाया। जब उसने कहा तुम महाराणा होना चाहते हो, मोकल को अपने मार्ग से हटाना चाहते हो, उस समय मेरी क्या दशा हुई। धरती मेरे पाँवो के नीचे से खिसकती हुई दिखाई दी। सिर पर सहस्रो वज्र टूटते हुए प्रतीत हुए। इतना बड़ा अभियोग राघव! और फिर मुझ पर, जिसने राज्य की आकाक्षा ही नही की।

कभी स्वप्न मे भी इच्छा नहीं की। समझ और सोच मेरा साथ छोड़ गए और उसी सन्ध्या को राव रणमल को राज्य का सब काम सौंप कर मै वहाँ से निकल आया। चित्तौड़ से बाहर निकल कर मैंने सुख की एक साँस ली। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अब मै आग पर चल रहा था। यहाँ आकर मेरे हृदय को ठंडक मिली, शान्ति मिली। भील सरदार मेरे साथ आए, मैने रोका भी, वह न रुके। माँडू के सुलतान ने कोई नाता न होने पर भी आश्रय दिया और यह जागीर दी। किन्तु माँ ने जिसके लिये मैं प्राणों को भी कोई महत्त्व नही देता था, मुझ पर इतना बड़ा अभियोग लगा दिया। फिर तुम कहते हो मुझे चित्तौड न छोड़ना चाहिए था।

राघव—किन्तु भाई, आपने परिस्थितियो पर विचार नही किया। आपका स्वच्छ हृदय माँ के द्वारा लगाया गय अभियोग सुन कर तड़प उठा आपने चित्तौड़ छोड़ दिया, यह न सोचा आप के आ जाने से चित्तौड़ पर क्या गुजरेगी ?

चंड—मै विवश था। सेवक का काम सेवक रहने ही मे है स्वामी बनने मे नहीं ?

राघव—भाई आप तो महान हैं। मैं अधम आप को कर्तव्य का पाठ क्या पढ़ाऊँगा, किन्तु जिस प्रकार अपने राजा को विपत्ति मे देख कर प्रजा का एक साधारण व्यक्ति भी उसकी रक्षा कर

सकता है, इसी प्रकार आप भी जाकर रणमल को देश से निकाल सकते हैं।

चंड—बिन बुलाए भाई मै यह नही कर सकता। यद्यपि मैने सेवकाई छोड दी है। यहाँ माँडू मे एक निर्वासित का जीवन बिता रहा हूँ। फिर भी आज्ञा होने पर मै स्वामी के लिये अपनी जान तक भी निछावर कर सकता हूँ। आज यदि छोटी माँ कहे तो मै एक रणमल क्या, समस्त राठौरो को चित्तौड से भगा दूँ। किन्तु उनकी आज्ञा बिना उनकी व्यवस्था मे मै कैसे दखल् दे सकता हूँ ?

राघव—आप को ज्ञात होगा, राजमाता स्वयं संकट अनुभव कर रही हैं। जाने उन्होने क्यो अभी तक आप को नही बुलवाया।

चंड—मैने सब कुछ सुना है। रणमल के षड्यन्त्रो का हाल सुना है, उसकी कूट नीति का हाल सुना है और सुना है कि वप्पा रावल के सिंहासन पर इस समय राठौर राज्य कर रहा है। उसके अत्याचारो की, जनता की बेबसी की कहानी सुन कर मेरा रक्त खौल उठा है, किन्तु मै विवश हूँ।

राघव—क्या आपने पिता जी से वायदा न किया था ?

चंड—क्या ?

राघव—कि आप महाराणा के बालिग होने तक राज्य का काम चलाएँगे।

चंड—हाँ किया था

राघव—फिर यह आप का कर्तव्य था कि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी करते।

चंड—भाई, तुम एक बात भूल जाते हो। सिहासन का अधिकार छोडने के साथ ही मेरा अपना अस्तित्व कुछ नही रह जाता। मैं राज्य का अधिकारी नहीं केवल एक सेवक हूँ। पहले पिता जी का सेवक था, अब राजमाता का सेवक हूँ और जब स्वामी की दृष्टि फिर जाए तो सेवक का कर्तव्य यही रह जाता है कि वह सब कुछ छोड़ कर अलग हो जाए।

राघव—चाहे उसमे स्वामी का अहित हो।

चड—यह विचारना सेवक का काम नही।

राघव—भाई मै तुम से छोटा हूँ, मेरी बुद्धि भी छोटी है, किन्तु मै इतना समझता हूँ, कि आप को मेवाड त्याग न करना चाहिए था। क्या अब, जब कि आप के पुर्खों का राज्य दूसरो के हाथ मे चला जा रहा है, आप बैठे, सत्य और असत्य, पुण्य और पाप, ईमानदारी और बेईमानी पर विचार करते रहेगे।

चड—मैने मेवाड़ को त्यागा नही। जब भी मेवाड के राणा तथा राजमाता को मेरी आवश्यकता हो, मै सब अपमानो को भूल कर चला जाऊँगा अपने प्राणो का मोह छोड कर मेवाड़ के मानहेतु लड़ूँगा। वे बुलाएँ तो सौ बार जाऊँगा, चाहे मैं तिरस्कृत होकर

आया हूँ, अपमानित होकर आया हूँ—हाँ, अनधिकार चेष्टा मै न करूँगा।

सेवक का प्रवेश

सेवक--महाराज, चित्तौड से राजमाता का भेजा हुआ दूत आया है।

चंड--बुला लाओ।

राघव—उन्होने आप को बुलाया होगा, मै पहले ही कहता था, उन्होने आपको बुलाया होगा।

दूत का प्रवेश, अभिवादन करके एक चिट्ठी देता है।

चंड पढ़ते हैं।

चिरंजीवी चंड,

केवल दो शब्द लिखूँगी, यद्यपि मैने वह अधिकार खो दिया है, किन्तु फिर भी और कुछ लिखने का समय नहीं। इस समय मेवाड़ का राज-मुकुट, मेवाड़ का महाराणा, राजमाता, मेवाड़ का अस्तित्व तक संकट मे हैं। सब ओर अँधेरा है, केवल तुम्हारी ओर से प्रकाश की एक हलकी सी रेखा आती है। अपने लिये तो मैने वह आशा भी खो दी है किन्तु मेवाड़ वासियो के लिये, उस अबोध बालक के लिये, मै तुम से सहायता की भीख माँगती हूँ। तुम वीर हो, सहृदय हो, मेरे लिये न सही अपने मेवाड के लिये आओ--शीघ्र! फिर आने से कुछ न बन सकेगा।

तुम्हारी दुखी माँ

हंसाबाई

चंड—इन पंक्तियो के पीछे भाई कितनी व्यथा छिपी है !

राघव—माँ बहुत दुखी प्रतीत होती हैं !

चंड—(दूत से) जाओ, तुम राजमाता से कह दो कि वह चिन्ता न करे। किसानो मे खैरात बाँटने के बहाने वे दुर्ग के आस-पास के गाँवो मे प्रतिदिन जाना आरम्भ कर दे। दीपमाला की सन्ध्या को मै चित्तौड़ के बाहर गोसुंडा के मन्दिर मे उनसे मिलूँगा।

दूत का प्रस्थान

—(सेवक से) तुम जाओ भील-सरदार को बुला लाओ (राघव से) मै भीलो को वापस भेज दूँगा कि वह अपने बाल-बच्चो को देखने के बहाने चित्तौड़ चले जाएँ और फिर वहाँ रह कर दुर्ग के फाटको पर पहरेदारो की हैसियत से भरती होने का प्रयास करे। दीपमाला के दिन मै स्वयं सेना लेकर प्रस्थान करूँगा और उस दिन राठोरो के अत्याचार का खात्मा हो जाएगा। तुम निश्चिन्त होकर अपनी जागीर पर जाओ।

राघव—जो आज्ञा !

प्रणाम करने के पश्चात् राघवदेव का प्रस्थान

चंड मस्तक पर हाथ रखे सोचते हैं।

पट परिवर्तन

४

खेलवाड़ा में राघवदेव का राजभवन

भारमली और राघवदेव

भारमली—तुम नही जानते, नही समझ सकते किस बेचैनी से मैने ये दिन काटे हैं। तुम पूछते हो मैने अपना प्रण क्यो तोड़ा? तुम्हारे महल मे क्यो चली आई। (दीर्घ निश्वास छोड़ती है।) तुम्हे क्या बताऊँ? मै कैसे अपने आपको अब तक रोक सकी हूँ। किन्तु आज तो हद हो गई। मैने ऐसी अनहोनी बाते देखी—ऐसी अनहोनी! कि मै अपने को रोक न सकी। कुमार! कुमार! कोई विशेष विपत्ति तुम पर आने वाली है। प्रातः से अपशकुन हो रहे हैं।

राघव—हँसता है।

भारमली—तुम हँसते हो। उस नन्हे बालक की भाँति, जो अग्नि की ज्वाला को देख कर हर्ष से बावला हो जाता है। नही जानता इस मे जलाने की शक्ति भी है, किन्तु जरा मेरे चेहरे की ओर देखो, यह चिन्ता से कितना सूख गया है, इन आँखो को देखो, इनमे कितनी जागृत राते छिपी पडी हैं। और इस हृदय पर हाथ रखो, यह कैसा धडक रहा है?

राघव—भारमली, भारमली, तुम्हे क्या हो गया है, तुम पागल हो गई हो?

भारमली—दिन को उल्लू बोलते हैं, श्वान रोते हैं, सियार एक विचित्र प्रकार का चीत्कार करते हैं, आकाश का रग रक्त जैसा लाल रहता है। अनहोनी बाते हो रही हैं यह सब अशुभ के लक्षण हैं। यह किसी की मृत्यु की सूचना देते हैं, किसी महान व्यक्ति के निर्धन की ओर संकेत करते हैं।

राघव - क्या कभी आगे उल्लू नही बोले, श्वान नहीं रोए, बिल्लियाँ नही चिल्लाई, सियार नहीं चीखे। प्रकृति सदैव अपने मार्ग पर चलती रहती है, यह हम ही हैं जो अपने मन के विकारो के अनुसार अर्थ निकालते रहते हैं।

भारमली—और सपने, यह भयानक सपने, जो मैंने इन दिनों देखे। मैने देखा, मेरे कमरे मे टँगा हुआ तुम्हारा चित्र गिरा और टुकडे टुकड़े हो गया और उस से रक्त की नदियाँ बह निकलीं। मैं चौंक कर उठी। उसी समय विजन मे उल्लू बोलने लगा। हृदय जोर से धक-धक करने लगा। सारी रात मै सो न सकी। रह-रह कर वही स्वप्न आँखो के सामने आता रहा। मैं तुम्हारे कुशल पूर्वक आने की प्रार्थना करती रही।

कुमार हॅसता है।

—फिर एक दिन मध्याह्न के समय में लेटी हुई थी कि झपकी आ गई। मैंने देखा एक मरुस्थल है और उसमें तुम भागे जा रहे हो, तुम्हारे शरीर पर घाव ही घाव हैं और

मरुस्थल का धरती रक्त से लाल हो रही है मेरा शरीर काँप गया। सारा दिन मै बेचैन रही, रात सपने मे मृत राणा दिखाई दिए। यह सब अशकुन ! मैं घबरा गई—मै रुक न सकी।

राघव - किन्तु देखो, मै कुशलता पूर्वक आ गया हूँ।

भारमली - तुम आ गए हो, इस बात से मै प्रसन्न हूँ, किन्तु देखो मेरी दाई आँख प्रात.काल से फड़क रही है। मै घबरा कर आने लगी तो बिल्ली मेरा मार्ग काट गई, मै फिर वापस चली गई। फिर आने लगी तो एक गिद्ध चीख उठा। फिर तीसरी बार आई तो मार्ग में एक मृत व्यक्ति की अर्थी मिली।

एक सेवक का प्रवेश

एक सेवक—महाराज चित्तोड से राजदूत आए हैं और आप के लिए पोशाक लाए हैं।

राघव—पोशाक ?

सेवक—हाँ महाराज ! महाराणा मोकल के जन्म दिन की खुशी मे राजमाता की ओर से भेजी गई पोशाक।

राघव—उन्हे बिठाओ मै आया।

भारमली—मुझे खटका है, मेरा दिल काँप रहा है, आशंका मेरी नस-नस में समाई जाती है। आप आज कही न जाएँ।

राघव—भारमली क्या कहती हो, क्या मै जागीर के कामो से हाथ खींच लूँ। मै सात दिन के बाद आया हूँ। कितनी ही बाते मुझे देखनी हैं, कितनी ही जगह मुझे जाना है।

भारमली—आज न जाएँ कुमार, मुझे आज एक ज्योतिषी ने बताया है। आज के दिन आप कहीं न जाएँ।

राघव—भारमली! तुम एक राजपूत को डराती हो। उसे मृत्यु से भय दिलाती हो। मृत्यु ही तो उसका प्रधान खेल है। तलवारों की झंकारों मे वह इसी से तो खेलता है। किन्तु तुम गायिका हो न, एक कोमल-हृदय कोमलांगी गायिका, तुम में राजपूतनी का दिल कहाँ ?

प्रस्थान

भारमली—कुमार, कुमार !

किवाड़ तक उस के पीछे जाती है।

पट-परिवर्तन

५

खेलवाड़ा के एक मकान का कमरा

पिछली दीवार की खिड़की से एक व्यक्ति बाहर की ओर देख रहा है। किवाड़ पर दस्तक होती है। वह नहीं सुनता फिर जोर से दस्तक होती है।

वह—(मुड़ कर) कौन है ?

—मैं हूँ, दरवाज़ा खोलो।

दरवाजा खोलता है, हरिसिंह प्रवेश करता है।

वही व्यक्ति—अरे, तुम किधर से ? यह क्या हाल बनाया है?

हरिसिंह—(पसीना पोंछता हुआ) चित्तौड़ गया था, वहीं से आ रहा हूँ। बड़ी कठिनाई से यहाँ पहुँच पाया हूँ। इतनी भीड ! आज बात क्या है?

जाकर खिड़की में देखता है

वही व्यक्ति—कुमार कत्ल कर दिए गए।

हरिसिंह—(मुड़ कर) कौन कुमार ?

वही व्यक्ति—कुमार राघव !

हरिसिंह—(चौंक कर) ऐ कुमार राघव ! किस ने उन की हत्या की ? कौन ऐसा हत्यारा है जिसे ऐसे प्रजा-वत्सल, न्याय-शील शासक से द्वेश था। आकाश से आग की वर्षा होगी और समस्त नगर उस में जल उठेगा। धरती अपना

गर्त खोल देगी और ये लोग, ये सब कृतघ्न लोग उस मे समा जाएँगे।

वही व्यक्ति—प्रजा मे से किसी ने उनकी हत्या नहीं की !

हरिसिंह—तो फिर किस ने की ?

वही व्यक्ति—उस ने, जो मेवाड़ पर भय का राज्य कर रहा है।

हरिसिंह—मेवाड पर तो महाराणा मोकल राज्य कर रहे हैं। राजमाता राज कर रही हैं। क्या विमाता की द्वेषाग्नि कुमार चंड को निर्वासित करके शान्त न हुई थी जो ...

वही व्यक्ति—राजमाता की आज्ञा से हत्या नहीं हुई।

हरिसिंह—तो फिर किस की आज्ञा से हुई ?

वही व्यक्ति—(धीरे से, रहस्य भरे स्वर मे) रणमल की आज्ञा से। वास्तव मे राज्य तो वही करता है। महाराणा मोकल और राजमाता तो पुतलियाँ हैं, जिन्हे जैसे वह चाहता है नचाता है। अब तो किसी दिन तुम सुन लोगे महाराणा मोकल की हत्या—मेवाड़ पर राठौर का शासन।

हरिसिंह—और युवराज ?

वही व्यक्ति—चंड ? धर्म-सूत्र मे बँधे हैं, वे मेवाड न आएँगे। राघव का डर था सो उन्हे इस तरह मार्ग से हटा दिया गया, रहे बालक राणा। उन का क्या है ? किसी क्षण भी वह मृत्यु की गहरी खोह में फेक दिए जा सकते हैं।

हरिसिंह—भगवान एकलिंग मेवाड़ की रक्षा करे।

वही व्यक्ति—अब स्वयं लकुटीश ही रक्षा करे तो कुछ हो सकता है। आसार तो बुरे हैं।

हरिसिंह—कुमार का वध हुआ कैसे। कुमार कहाँ थे, उनके सैनिक कहाँ थे।

वही व्यक्ति—अभी कल कुमार मॉडू से आए थे। वहाँ शायद बड़े भाई से मिलने गए थे। आज दो दूत महाराणा मोकल के जन्म-दिन की खुशी मे चित्तौड से एक पोशाक लाए और कहा कि राजमाता ने इसे भेजा है। मातृ-भक्त, स्वामि-भक्त कुमार ने ज्यो ही अपनी दोनो भुजाएँ चोले मे डाली कि उन नीचो ने अपने भयानक छुरे उन के शरीर मे भोक दिए।

हरिसिंह—शिव, शिव! उन कायरो को किसी ने पकड़ा नहीं?

वही व्यक्ति—वहाँ पकड़ता कौन? राठौर सेनाएँ गुप्त रूप से खेलवाड़ा में दाखिल हो चुकी थीं, दुर्ग पर उन्होने हमला कर दिया। सेवक कुमार के मृतक शरीर और भारमली के साथ भागे भारमली पकड ली गई और कुमार की अर्थी अव ले जाई।जा रही है।

हरिसिंह—(हैरानी से) भारमली—उसे तो कुमार ने महलो मे आने से रोक दिया था। वह फिर वहाँ क्यों गई थी?

वही व्यक्ति—शायद उसे इस षड्यन्त्र की आशंका हो गई थी और वह कुमार को सावधान करने गई थी।

हरिसिंह—(निश्वास छोड कर) उसी के लिये तो यह सब कुछ

हुआ, यह कुमार की असामयिक मृत्यु भी! अब कुमार को पितृदेव* की पदवी मिलेगी, बप्पा रावल के वंश मे और किसकी ऐसी मृत्यु हुई। आज के दिन घर घर उनकी पूजा हुआ करेगी।

वही व्यक्ति—और समस्त जागीर मे ऐसा विद्रोह उठेगा जो दबाए से न दब सकेगा, जो आततायिओ को, उनके अत्याचारो को जड़ से उखाड़ कर ही शान्त होगा।

हरिसिंह—(मुड कर) मै जाता हूँ। मैं चैन न पा सकूँगा। मैं खेलवाड़ा को राठौरों के अधीन होता न देख सकूँगा। प्रजा मे जोश है, लोहा तप रहा है, अभी चोट पडनी चाहिए।

प्रस्थान

वही व्यक्ति—ठहरो, मैं भी आया, तुम जाओगे तो मै कब पीछे रह सकूँगा।

प्रस्थान

पट-परिवर्तन

---

* मेवाड़ में यह रिवाज था कि जब राजवश में किसी की अचानक तथा असामयिक मृत्यु हो जाती थी तो उसे पितृदेव की पदवी मिल जाती थी और घर घर उसकी पूजा होती थी।—'टाड राजस्थान'

६

दीपमाला की सन्ध्या

चित्तौड़ के एक फाटक पर दो पहरेदार

पहला—युवराज नही आए। यह अत्याचार अब असह्य हो रहा है। कुचक्रो की बेड़ियो मे जकड़ा हुआ मेवाड़ आर्तनाद कर उठा है।

दूसरा—धीरे-धीरे बाते करो कोई सुन लेगा।

पहला– भाई, अब सहा नही जाता। किसी बहिन बेटी की इज्जत सुरक्षित नहीं। अत्याचारियो की क्रूरता के कारण मेवाड़ की ललनाएँ आत्म-हत्याएँ कर रही हैं। दिन-दहाड़े डाके पड़ते हैं। जहाँ खुले दरवाजे कोई न आता था, वहाँ दिन को भी लूट का बाजार गरम रहता है।

दूसरा—और डाकू कही बाहर से नही आते—रक्षक ही भक्षक हैं।

पहला—आज युवराज के आने का दिन था।

दूसरा—किन्तु वह अभी तक नही आए। सूरज अस्ताचल मे छिप गया है; अमावस की रात अपने अन्धकार को लिए बढी चली आ रही है; दुखो को भूल कर भी लोग बरबस दीपमाला का आयोजन कर रहे हैं। आज जाने

कितना मदिरा पान होगा । जनता के रुपये का कितना दुरुपयोग होगा। भोले-भाले निरीह नागरिको पर कितना अत्याचार होगा ?

पहला—बस प्याला भर चुका है, कोई क्षण को छलका ही चाहता है।

दूसरा—हमारी ओर से सब प्रबन्ध हो गया है । इस समय हमारे दो हजार व्यक्ति दुर्ग मे आ चुके हैं और विश्वस्त स्थानो पर लगे हुए हैं । दुर्ग के सब अन्दरूनी फाटको पर अपने आदमी है। अब तो केवल उन के आने की देर है । तलवारें हमारे म्यानो मे तडप रही हैं, आज रात आततायिओ के रक्त से इन की प्यास बुझेगी—केवल युवराज के आने की देर है।

पहला—और यदि वे न आए ।

दूसरा—न आए ! यह तुम ने क्या कहा । वह न आएँगे, प्रण करके न आएँगे ? ऐसा कभी हो सकता है ? कर्तव्य के आगे वह अपने मान-अपमान को कोई महत्त्व नही देते।

पहला—सुना है, खेलवाड़ा मे भी विद्रोह हो गया है। कुमार राघव की मृत्यु के बाद जो ज्वाला धधकी थी वह बुझाये नहीं बुझी। आधी राठौर सेनाएँ उधर गई हुई हैं ।

दूसरा—यह और भी अच्छा है। कुछ क्षण में ही पाँसा पलट जाएगा। दुर्ग मे सेना कम है और जो है वह भी असावधानी

के नशे मे चूर है। स्वयं राठौर भारमली के प्रेम मे विमुग्ध विलासिता की गहरी नीद सो रहा है। भुस तैयार है, केवल दिया सलाई दिखाने की जरूरत है, अत्याचार, पाप, क्रूरता सब धू-धू करके जल उठेगे।

पहला--इस नारी का स्वभाव भी विचित्र है। माया की भाँति यदि आज यह एक के घर कृपा करती है तो कल दूसरे के आँगन मे छमछमाती है। कुमार जीवित थे तो यह उन का दम भरती थी और आज उन के हत्यारे का।

दूसरा--मै तो उसे देवताओ की ओर से भेजी हुई राठौर की वदबख्ती समझता हूँ, जो उसे मृत्यु के दहाने पर ला खड़ा कर देगी। सोचो यदि वह न आ जाती तो क्या हम अपने उद्देश्य मे सफल हो सकते ? क्या सतर्क रणमल की उपस्थिति मे हमारी योजनाएँ पूरी हो सकती ? भारमली के वेश मे राठौर की मृत्यु आई है। आज वह वेहोश है, यौवन की मदिरा पी कर वेसुध है, उसे क्या मालूम खेलवाड़ा मे विद्रोह शान्त नही हुआ, उसे क्या मालूम उस के कर्मचारी उस के शासन की जड़े खोखली कर रहे हैं, उसे क्या मालूम उस के सरदार उस से असतुष्ट होकर उस के राज्य का पाँसा पलट देना चाहते हैं। वह तो मस्त है और तभी जागेगा जब मृत्यु उस का कंधा झँझोड़ कर जगाएगी।

पहला--सुनो, सुनो ! यह कैसा शोर मच रहा है।

दोनों सुनते हैं।

पहला—जैसे दूर सागर गरज रहा हो !

दूसरा—जैसे भयानक आँधी चल रही हो !

दोनों नेपथ्य की ओर देखते हैं ।

पहला—अरे यह तो युद्ध हो रहा है !!

दूसरा—युवराज और सैनिकों के हलके मे राजमाता और महाराणा आ रहे हैं । फाटक खोल दो ! और तलवारें निकाल लो !!

पहला—जय एकलिंग की, जय एकलिंग की ।

फाटक खोलता है ।

'महाराणा मोकल की जय' 'राजमाता की जय'

के सिंहनाद में नंगी तलवारें लिए कुमार

चंड और दूसरे सैनिकों का प्रवेश

पहरेदार अभिवादन करते हैं ।

चंड—जाओ, वीरो आज अपने देश को स्वतन्त्र कराने के लिये प्रलय की भाँति राठौर सेना पर टूट पड़ो । नगर के द्वार खोल दो । जहाँ कोई राठौर मिले मृत्यु के घाट उतार दो । सब जगह हमारे आक्रमण का शोर मचा दो । आज अपने प्रिय राघव की मृत्यु का, देश को दासता की बेड़ियो मे जकड़ने का, अत्याचारो का, सब का खून बदला लो। महाराणा मोकल की……

सब—(ऊँचे स्वर से) जय ।

चंड—राजमाता की ·······

सब—(ऊँचे स्वर से) जय ।

चंड—मैं महाराणा को सकुशल महलों तक पहुँचा कर आता हूँ। तुम जाओ रणमल को पकड़ लाओ, दूसरे सरदारों को पकड़ लाओ, न पकड़ सको तो उन सब के रक्त से खड्ग भवानी की प्यास बुझा दो ।

प्रस्थान

परदा गिर कर क्षण भर के लिये
फिर उठता है ।

भागते हुए राठौरों और उनका पीछा करते हुए
सिसोदियों का प्रवेश और प्रस्थान,
नेपथ्य में मारकाट का शोर

पट-परिवर्तन

रणमल अपने उल्लास भवन मे भरमली के हाथ
से मदिरा पीता है।

रणमल—भारमली !

भारमली—कहो राव !

रणमल—(नशे में) राव नही राणा कहो। अव भी केवल राव ! कहो तो, आज, इसी घडी चित्तौड का राणा हो जाऊँ, मेवाड़ का महाराणा हो जाऊँ !

प्याला खाली करके भारमली को देता है।

भारमली फिर भरती है।

रणमल—(मूछों पर ताव देता हुआ) भारमली, तुम रानी होना चाहती हो, मेवाड़ की महारानी ?

भारमली—(प्याला उसकी ओर वढा कर, कटाक्ष से) कौन स्त्री महारानी वनने से इनकार कर सकती है राव, धन-सम्पत्ति ऐश्वर्य तथा वैभव किसे वुरा लगता है ?

रणमल—(नशे के जोश में) तो प्रण करो भारमली ! यदि मैं राणा हुआ, तुम मेरी महारानी वनना स्वीकार करोगी। प्रण करो, मै कल ही अपने आपको मेवाड़ का राणा घोषित कर दूँगा। आज किस में शक्ति है कि रणमल के सामने खड़ा हो सके। उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर सके। रहा मोकल ! वह तो

मेरे हाथ का खिलौना है। वास्तव मे राणा तो मै ही हूँ।

मदिरा पान करता है।

भारमली—आप पहले महाराणा बन ले। मेरा क्या है? मै कहीं दूर तो नहीं! फिर मेरी इच्छा अनिच्छा का प्रश्न भी कहाँ है? आप के पास बल है, शक्ति है और मैं ठहरी अबला नारी।

रणमल—नही भारमली, शक्ति से मै तुम्हारा शरीर बस मे कर सकता हूँ, मन नही। चाहता हूँ, तुम मन से मेरी बन जाओ।

भारमली—मन! मन तो एक विचित्र वस्तु है महाराज!

भारमली प्याला भरती है।

रणमल—भारमली, पिलाओ। आज दीपमाला के दिन अपने इन कोमल कर-कमलो से जितनी पिला सकती हो, पिलाओ। होश न रहे, ज्ञान न रहे। (हँसता है।) आज मदिरा मे न जाने कैसी मादकता है, कैसी मस्ती है। एक घना अन्धकार मेरे मस्तिष्क पर, मेरी समस्त शक्तियो पर छाया जाता है। अंग-अंग मे एक विचित्र स्फूर्ति, एक विचित्र नशा, एक विचित्र सरूर प्रतीत होता है। तुम्हारे इन हाथों मे जादू है भारमली!

भारमली मदिरा का प्याला देती है।

उठ कर पीता है फिर लेट जाता है।

रणमल—(अटपटे स्वर में) भारमली, कोई गाना सुनाओ। इस सरूर पर एक और सरूर की तह चढा दो।

भारमली लम्बा साँस लेती है। गाती है, जैसे रणमल
को नहीं, अपने मन को सुना रही हो।

तुम को मरने का डर है
मुझ को जीने का खटका
तुम को जीने की धुन है
मुझ को मरने का खटका

रणमल—(नशे में) भारमली, क्या गाने लगीं ? मृत्यु का नहीं, जीवन का गीत गाओ, जीवन का !

भारमली नहीं सुनती गाए जाती है।

तुम जीने पर मरते हो
मैं मरने को जीती हूँ
तुम जो हाला ठुकराते
मैं वह प्याला पीती हूँ

रणमल—(नशे में) प्याला पीती हूँ—वाह ! क्या बात है—लाओ एक और प्याला इधर भी।

भारमली गाते गाते प्याला भर कर देती है।

बाहर युद्ध का शोर सुनाई देता है।

तलवारों की झंकार और सैनिकों के गिरने का शब्द

दरवाजे पर ज़ोर जोर से दस्तक

एक आवाज़—महाराज भागिए, महाराज भागिए, दुर्ग पर आक्रमण हो गया है।

भारमली गाना बन्द कर देती है।

रणमल—(अर्धनिद्रावस्था में, आँखें बन्द किए हुए मदिरा का एक एक घूट पीता हुआ) भारमली ! बन्द कर दिया, गाओ, किसी बात की परवाह नहीं, किसी बात की चिन्ता नहीं तुम गाओ। नगर पर आक्रमण हो, नगर विध्वंस हो जाए, तुम गाओ।

भारमली गाती है।

तुम मर मर चाहो जीना
मैं जी जी चाहूँ मरना
तुम चाहो सुख लेना ही
मैं दुख से आँचल भरना

रणमल बेहोश है, भारमली प्याला फेंकती है।

उसकी पगडी मे उसे बाँध देती है।

रणमल एक बार आँखें खोलता है।

रणमल—भारमली, यह क्या कर रही हो ?

भारमली—(व्यङ्ग से) अपने प्रेमपाश में तुम्हें बाँध रही हूँ, ताकि कहीं भाग न जाओ।

दरवाज़ा खटखटाने और 'किवाड़ खोलो'

'किवाड़ खोलो' का शोर

एक तलवार किवाड़ चीर कर अन्दर निकल आती है।

रणमल—प्रेमपाश !

हँसता है, आँखें फिर बन्द कर लेता है।

कई तलवारें किवाड़ छेदती हैं।

भारमली—(कमर से छुरा निकालती है।) मंडोवर के नारकीय कीड़े, नीच, पापी, नराधम अब तेरा अन्तिम समय है। आज मैं अपने अपमान का, नगर की निर्बोध, निरीह ललनाओं के अपमान का, कुमार राघव के अपमान का, उन की हत्या का सब का इकट्ठा बदला चुकाऊँगी। प्रतिशोध मे जलती हुई मेरे हृदय की ज्वाला आज शान्त हो जाएगी।

किवाड़ तोड़ा जा रहा है।

—लोगो ने समझा होगा, भारमली नीच गायिका ही निकली। कुमार के मरने पर रणमल के विलास-भवन का खिलौना बनने आ गई, अपमानित होकर मर नहीं गई। उन्हें क्या मालूम भारमली मरना चाहती थी, भारमली मर जाएगी, किन्तु प्रतिहिंसा की आग ने उसे अब तक मरने न दिया। वह बदला लेकर मरना जानती है। अपमान की ज्वाला को शान्त किए बिना मरना नहीं जानती।

छुरा चलाती है, हाथ काप जाता है रणमल का
कन्धा छलनी होता है। वह तिलमिला कर
उठता है, जोर लगा कर अपनी टॉगों को
बन्धन-मुक्त कर लेता है। भारमली फिर
छुरा उठाती है। किवाड़ टूट जाता
है और नगी तलवारें लिए
सैनिक प्रवेश करते हैं।

नायक—कहाँ हैं पापी अत्याचारी रणमल ?

रणमल को देख कर तलवार उठाते हैं।

भारमली—ठहरो, मुझे इससे अपने बहुत से अपमानों का बदला लेना है।

रणमल एक हाथ खोल लेता है।

नायक—देवि, पुरुषो के होते हुए, स्त्री को खड्ग हाथ मे लेने की आवश्यकता नहीं। आज राठौर के पाप का अन्त हो जाएगा और धरती इसके बोझ से हलकी हो जाएगी।

रणमल स्वतन्त्र हो जाता है, कमरे में रखा
पीतल का कलश उठाता है और भारमली पर
वार करता है। वह झुक जाती है, गिर पड़ती है।
वही कलश वह नायक पर पूरे जोर से मारता है
वह अचेत होकर गिरता है। एक हाथ मे उसकी
तलवार छीन कर दूसरे में पकड़े हुए कलश से

अन्य सैनिकों के वारों को रोक कर वह लड़ता
लड़ता बाहर चला जाता है।

भारमली—(धीरे धीरे उठती है, नेपथ्य की ओर देखती है, चौंकती है, जल्दी से छुरा उठाती है।) तुम भागना चाहते हो, तुम भारमली के रहते भाग जाओगे !

पूरे जोर से छुरा फेंकती है, किसी के गिरने की आवाज़
'महाराणा की जय' 'राजमाता की जय' के नारे।

पट-परिवर्तन

८

कुछ सैनिक धरती पर रणमल के रक्त रंजित मृत

शरीर को घेरे खड़े हैं।

हरिसिंह तलवार खींचे प्रवेश करता है।

हरिसिंह—कहाँ है वह निर्दयी, क्रूर राठौर ? आज मेरी खड्ग अपने स्वामी की हत्या का प्रतिशोध लेने के लिये तड़प रही है।

सैनिक आगे से हट जाते हैं।

—मर गया ? (निराशा से) इतनी दूर से बिना सुस्ताए, बिना आराम किए, प्रतिहिंसा के परों पर उडते हुए, आना वृथा हुआ। प्रण किया था कुमार राघव की मृत्यु का बदला लूँगा। भगवान ने इसके पापों का प्याला पहले ही छलका दिया, इस पापी के रक्त से मेरी खड्ग को अपवित्र होने से बचा लिया।

सैनिकों के साथ चंड का प्रवेश

'राजमाता की जय' 'कुमार चंड की जय' का शोर

चंड—(रणमल के शव की ओर देख कर) किस वीर की खड्ग ने इस पापी को मृत्यु का जाम पिलाया, किस बहादुर की तेग ने मेवाड़ के अपमान का बदला चुकाया—मैं उसे पुरस्कार दूँगा।

सब चुप रहते हैं।

चंड—(आश्चर्य से उनकी ओर देख कर) आप मे से किस ने......

एक सैनिक—महाराज! रणमल हमारे चार सैनिकों को मार कर निकल ही भागा था कि......

चंड—तुम्हारी तलवार ने उसके पाप का अन्त कर दिया।

वही सैनिक—नही महाराज!

चंड—(बेताबी से) तो किस ने... .

वही सैनिक—भारमली के छुरे ने! उस का काम तमाम कर दिया।

चंड—भारमली के छुरे ने! कहाँ है भारमली?

दो सेवक घायल भारमली को उठाए प्रवेश करते हैं।
और फर्श पर लिटा देते हैं।

चंड—यह कैसे घायल हुई।

एक सेवक—इन्होंने आत्म-हत्या कर ली। जब हम (रणमल की ओर इशारा करके) इस के कमरे मे गए तो इन्हें रक्त मे लथपथ पड़े पाया।

वही सैनिक—जब हम रणमल की खोज करते आए थे तो कमरे के किवाड़ बन्द थे। जब हम ने उन्हे तोड डाला, तो देखा कि यह चारपाई से बँधा पड़ा है और भारमली छुरा ताने खड़ी है। हमने भारमली को वध करने से रोका इस बीच

मे रणमल आजाद हो गया। खूब लड़ाई हुई, जान बचाने के लिये वह जी तोड कर लड़ा, हमारे कुछ सैनिक भी मारे गए और मेरी खड्ग उसे धराशायी करने ही वाली थी, कि भारमली ने छुरा तान मारा जिस से वह गिर पडा। फिर यह आई और छुरा खेंच कर ले गई, शायद उसी से इस ने अपनी हत्या कर ली।

भारमली आँखें खोल कर फटी-फटी

दृष्टि से देखती है।

चंड—भारमली!

भारमली—(छत की ओर देखते हुए, क्षीण आवाज में) मै राघव के पास जा रही हूँ।

चंड—भारमली!

भारमली—(उखड़े स्वर से) मुझे खेलवाडा मे ले जाकर जलाना।

आँखें बन्द हो जाती है।

चंड—(लम्बी साँस लेकर) भारमली देवी थी, मेवाड की वरी रमणी थी! गायिका ही नहीं थी, हीन ही नही थी, उपेक्षा के योग्य ही नहीं थी! (फिर दीर्घ निश्वास छोड़ते हैं।) इस शव को खेलवाड़ा पहुँचा दिया जाए और उसकी इच्छा के अनुसार ही इसका अन्तिम संस्कार किया जाए।

हरिसिंह-- (रणमल के शव की ओर इशारा करके) और इसके साथ क्या सलूक किया जाए। ऐसे पापी का सिर काट कर दुर्ग के मीनार पर लटकाना चाहिए और शरीर चील और कौओ का भोजन बनने के लिए फेक देना चाहिए।

चंड—हाँ, इस कृतघ्न का सिर काट लो और उसे दुर्ग के मीनार पर ·

तेजी से हसावाई का प्रवेश

हंसावाई—नही सिर न काटो, मारो नहीं। इसे छोड़ दो, मेरे इस निष्ठुर भाई को छोड दो।

रणमल के मृत शरीर को देख कर

—हाय, मार दिया, मेरे भाई को मार दिया, किसने, यह हत्या की। (चड की ओर देख कर) तुमने इसे मारा, तुम ने मेरे भाई के छुरा भोका। अच्छा हुआ, मैंने जो तुम्हारा अपमान किया था, तुम ने उसका बदला ले लिया। वहिन को भाई से सदा के लिये जुदा कर दिया

चंड—माँ, माँ !

हंसावाई—वह मूर्ख था, कृतघ्न था, किन्तु फिर भी मेरा भाई था, मैंने उस से सगे भाइयो से अधिक प्रेम किया था, मैं उसे केवल दंड देना चाहती थी, मारना न चाहती थी। किन्तु तुम—चलो तुम्हारे मार्ग से यह काँटा भी निकल गया।

चंड—माँ ! यह सेवक की सहन-शक्ति से वाहर है, तुम ने

बुलाया मै चला आया, तुम धक्के देती हो मै चला जाऊँगा।

तेजी से प्रस्थान

हरिसिंह—कुमार, कुमार .. ठहरो मै भी आया।

प्रस्थान

हसाबाई—(जैसे चौंक कर, दो पग बढ कर) चंड ! चंड !! ......चला गया। आह ! मै अपने आप मे नही हूँ।

शव की ओर देख कर, रोते हुए

—तुम मेरे भाई थे, शत्रु ही सही, मेरे बच्चे से द्वेष रखने वाले ही सही, मेरी माँ और भाई के घातक ही सही, फिर भी मेरे भाई थे, मेरे साथ बचपन मे खेले थे, मेरे पितृ-कुल के अन्तिम दीप थे। तुम ने कभी न जाना, तुम्हारी इस सौतेली बहिन के हृदय मे तुम्हारे लिये कितना स्नेह है, कितनी मुहब्बत है, उसका हृदय किस तरह फटा पड़ता है !

पछाड़ खा कर शव पर गिर पड़ती है।

पट-परिवर्तन

६

चित्तौड़ का एक मार्ग

सामने शिव का विशाल मन्दिर दीपमाला की

रोशनी से जगमगा रहा है।

अन्दर से गाने की धीमी धीमी ध्वनि आ रही है

हे शिव हे शंकर हे ईश

जय जय जय जय जय लकुटीश

कुमार चंड और उनके पीछे पीछे हरिसिंह का प्रवेश

गाने की ध्वनि जारी रहती है।

युग युग जिएँ हमारे चंड

पापी पाएँ भारी दंड

फिर हो सुख का राज अखंड

सब गुण गायें तेरे ईश

जय जय जय जय.. ...

हरिसिंह—(निश्वास छोड़ कर, जैसे अपने आप) सारा मेवाड आज अपने रक्षक की प्रशंसा के गीत गा रहा है, दासता की बेडियों से मुक्त होकर, स्वतन्त्र होकर, सुख मना रहा है? और उसका वह रक्षक, उसकी बेड़ियों को काटने वाला उसे छोड़ कर, उसे त्याग कर जा रहा है।

चंड—(चलते चलते रुक कर) हरिसिंह!...............

· ····मनुष्य का कर्तव्य काम करना है, उसके फल की इच्छा करना नही।

हरिसिंह—किन्तु महाराज! ये आप को छोड़ेगे नही, ये मेवाड़ वासी आप के मेवाड़ त्याग की वात सुन कर फिर आप को ले आएँगे।

कुमार चुप रहते हैं।

हरिसिंह—मै कहता हूँ महाराज! स्वयं राजमाता आप से आने का अनुरोध करेगी, स्वयं महाराणा आप को लेने जाएँगे, मेवाड़ वासी आप के पॉव पडेगे। मै भविष्यवाणी करता हूँ—आप को लौटना होगा।

चंड—(शून्य में देखते हुए) राजमाता कहती हैं—मैने रणमल को मरवा दिया, मै उसे पथ का कॉटा समझता था, मैं अपने अपमान का वदला लेना चाहता था।

हरिसिंह—इस समय महाराज! उनकी ऑखो पर अपने भाई की मृत्यु के दुख का परदा छाया हुआ है, ज्यो ही वह हट जाएगा, वे आएँगी, मै कहता हूँ आप आज की रात रुक जाइए।

चंड—भविष्य की वातो को सोचने से क्या लाभ, हरिसिंह? मनुष्य को अपनी ऑखे सदैव वर्तमान पर ही रखनी चाहिएँ।

चल पड़ते हैं।

हरिसिंह—(पीछे चलता हुआ) महाराज, रात को कहाँ जाएँगे?

चंड—मेरे लिये अव रात दिन एक समान हैं।

हरिसिंह—रास्ता ऊबड़-खाबड़ है महाराज !

चड—रास्तो का ज्ञान रखना मैने कब का छोड दिया मै।

प्रस्थान

हरिसिंह—महाराज !......महाराज !!

प्रस्थान

पटाक्षेप